भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता।
NATIONAL LIBRARY, CALCUTTA

वर्ग संख्या
Class No. 181·Lb
पुस्तक संख्या
Book No. 90·14
रा० पु०/ N. L. 38.

MGIPC—S19—69/1842/14 LNL (PB)—25-5-70—150,000.

काशीखण्ड।

पूर्व्वार्द्ध।

भाषानुवाद।

कलकत्ता।

३८।२ भवानीचरण दत्त ष्ट्रीट वङ्गवासी इलेक्ट्री-मेशीन प्रेसमें

श्रीनटवर चक्रवर्त्ती द्वारा मुद्रित

और प्रकाशित।

सम्बत् १९६४।

मूल्य ४) रुपया।

BENGAL LIBRARY
8. FEB. 1909

काशीखण्ड।

प्रथम अध्याय।

विन्ध्य-वृद्धि।

त्रिविधताप-निर्म्मुक्त, भवानीतनय गजेन्द्रवदन सुप्रसिद्ध विघ्नराज गणपतिको, हम लोग ध्यान करते हैं!

जो काशी, भूमिपर रहकर भी, स्वयं पृथिवी नहीं है; जो अधःस्थिता होकर भी स्वर्गसे उच्चतर है; जो स्वयं भूमण्डलमें बंधी रहनेके नामसे प्रतीयमाना होकर भी मुक्तिदान करती है—जिस स्थानमें प्राण परित्याग करके जीवगण मुक्ति लाभ, किया करते हैं,—वही सदासुरगणसेविता, गङ्गातीरविराजिता, विश्वेश्वर-राजधानी, त्रिलोकविदिता काशी जगतकी विपत्ति विनाश करे!

त्रिलोक-पति—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर-जिसके त्रिसन्ध्याव्यपदेशमें निरन्तर गमनागमन करते हैं, उन्हीं महेश्वर आदित्यको नमस्कार है! अष्टादश-पुराण-प्रणेता सत्यवतीनन्दन व्यास, सूतसे निखिल-कलुषहारिणी काशीखण्ड-कथा कीर्त्तन करने लगे;—एक समय श्रीमान् देवर्षि नारदने, सुशोभन नर्म्मदा नीरमें स्नान और सब जीवोंके धर्म्मार्थ-काममोक्षदाता गौरी-समन्वित ओङ्कारेश्वरकी पूजा करके जाते जाते सामने संसारतापविनाशन-नर्म्मदा सलिल-परिष्कृत विन्ध्य पर्व्वतको देखा। देखा, कि विन्ध्यगिरिके सुशोभन स्थावर और जङ्गम इन दोनों शरीर द्वारा ही पृथिवीके "वसुमती" नामकी सम्पूर्णरूपसे सार्थकता सम्पादन होती है। विन्ध्यगिरि, रसाल पादपोंके समावेशसे रसपूर्ण, अशोक तरुराजिके अधिष्ठानसे आश्रितका शोकापह है। इसके अतिरिक्त देखा, कि ताल, तमाल, हिन्ताल, शाल, वनस्पति विन्ध्यमें सर्व्वत्र शोभा सम्पादन कर रही है। देखा, कि विन्ध्यगिरि श्रीफल वृक्षश्रेणीद्वारा गगन-मण्डल आवरण करके अवस्थित, विल्वपादपवृन्दसे परिशोभित, अगुरुवनसे विराजित और कपित्थकाननसे पिङ्गलवर्ण है। नारदने देखा, कि विन्ध्य पर्व्वत अरण्य-लक्ष्मीके स्तनमण्डल सदृश फलपूर्ण, लकुच-तरुकदम्बसे मनोहर और सुधास्वादफल-सम्पन्न रम्भास्तम्भसे परिशोभित है। नारदने

देखा, कि विन्ध्यगिरि अनुरागवर्द्धक नाग-रङ्ग-तरुनिकरसे रङ्गभूमिवत् शोभमान और वानीर, वीजपूर और जम्बीर वृक्षसे परिपूर्ण है। उन्होंने देखा, कि इस पर्व्वतका कोई स्थान, मन्द मारुत-हिल्लोलसे कम्पमान अनन्त कक्कोल-लतिका द्वारा नृत्य-परायणा कामिनीगणकी शोभा हरण करता है। कोई स्थल लवलीकिशलयावली वायुसे थोड़ा कम्पित होनेसे जान पड़ता है, कि यह सुसज्जित नृत्यागार है। किसी स्थलमें वायु-विकम्पित कर्पूर और कदली विटपनिकर द्वारा यह पर्व्वत मानो अतिशय श्रान्त पथिकोंको विश्रामके लिये आह्वान करता है। किसी स्थलमें मल्लिका-गुच्छरूप स्तनपर ईषत् चञ्चल पुन्नागतरु-पल्लवरूप करपल्लव फैलाकर, विन्ध्यपर्व्वत, किसी कामि-पुरुष प्रधानकीसी शोभा पा रहा है। विन्ध्यपर्व्वत, विदीर्ण दाड़िम्ब फल द्वारा मानो अपने अनुरागपूर्ण हृदयका भाव प्रकाश करता हुआ वनमध्यवर्त्तिनी माधवी लताको पतिरूपसे मानो आलिङ्गन करता है। अनन्तकाल सम्पन्न गगनस्पर्शी उदुम्बुर तरु-निकरके अस्तित्व प्रयुक्त विन्ध्यगिरि ब्रह्माण्ड कोटिधारी अनन्तकी तरह प्रतीयमान होता है। वनस्थलीके नासिका सदृश पनस फलराजिने विन्ध्यगिरिको आवरण कर रखा है। शुक-नासाकृति पलाश वृक्ष; विरहियोंकी विरहोद्दीपना करता हुआ उनके मांस भोजन अर्थात् कुशल सम्पादनके फलसे स्वयं गलितपत्र होकर (दूसरेको दुःख देनेसे अपनेको दुःख होता है, यह वाक्य सार्थक करता हुआ) विन्ध्यपर्व्वतको आच्छादन किये है। कदम्ब कहकर आत्म-परिचय-प्रदानकारी नीपतरुवरको (क्षुद्र कदम्ब समूहको) देखकर ही मानो रोषकण्टकित भावसे अवस्थित (वृहत्) कदम्ब समूह विन्ध्य गिरिकी शोभा सम्पादन करता है। सुमेरुवत् उच्च शिखर-सम्पन्न नमेरु पादप, राजादन वृक्ष और कामिजनसदन सदृश मदन वृक्ष द्वारा विराजित विन्ध्यपर्व्वतके स्थान स्थानमें अत्युच्च वटवृक्ष पटमण्डपकीसी शोभा पाता है। मानो काधिष्ठान-युक्त कुटजगुच्छ विन्ध्यपर्व्वतमें विराजमान है। करमर्द्द, करीर, करञ्ज और कलम्ब वृक्षश्रेणी विन्ध्यगिरिके याचकाह्वान-समुद्यत सहस्र-करवत् शोभा पाता है। स्थान स्थानपर असंख्य उज्ज्वलवर्ण राज चम्पक-कोरक-श्रेणी मानो विन्ध्यगिरिकी आरति करती प्रतीयमान होती है। कुसुमावलि-विराजित शाल्मली तरुनिकर द्वारा विन्ध्य-पर्व्वतकी शोभा सरोवर-शोभा अपेक्षा भी उत्कृष्ट हो गई है। अश्वत्थवृक्ष, काञ्चन-केतक, श्रेणीबद्ध उत्कृष्ट करञ्ज वृक्षनिचय विन्ध्यपर्व्वतकी अतीव शोभा सम्पादन करते हैं। बदरी, बन्धुजीव जीवपुत्र नामक वृक्षसमूह विन्ध्यगिरिको सुशोभित करते हैं। तिन्दूक और इङ्गुदीवृक्षराजी

समाच्छन्न करुणालय विन्ध्य, करुण वृक्ष द्वारा आवृत है। वृक्ष-विच्युत असंख्य मधूकपुष्परूप स्वहस्तविमुक्त मुक्ताराशि द्वारा विन्ध्यपर्व्वत मानो पृथिवीरूपधारी शिवकी पूजा करता है। साल, अर्ज्जुन और अञ्जन प्रभृति वृक्षश्रेणी चंवरकी तरह विन्ध्यगिरिको वीजन करती है। कहीं कहीं ताल और नारियलकी वृक्ष-राजी मानो उनके मस्तकपर छत्र धारण किये दण्डायमान है। उत्तम निम्ब, पारिजात, कोविदार, पाटल, तिन्तिडी, वदर, आखोट, और करादटक वृक्षनिकर द्वारा विन्ध्यगिरि विराजित है। उद्दण्ड, शैलुण्ड, एरण्डमधूक, वकुल तिलक प्रभृति विविध वृक्ष विन्ध्यपर्व्वतशिरपर तिलकवत् शोभा पाते हैं। विभीतक, प्लक्ष, शल्लकी, देवदारु, हरीतकी प्रभृति बहुविध वृक्ष और सभी समय फल और पुष्पशाली नाना प्रकारके वृक्ष और लता द्वारा विन्ध्य-गिरि विराजित है। एला लवङ्ग, मरीच और कुलञ्जन वन द्वारा विन्ध्यपर्व्वत आ-च्छन्न है। जम्बु, आम्रातक, भल्लात, शेलु, गम्भारी प्रभृति वृक्ष, नानाविध शुक्तिसमूह, असंख्य श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, धात्रीवन और शत द्राक्षालता, ताम्बूलवल्ली और पिप्पली लता विन्ध्य-गिरिको वेष्टन किये हुई हैं। मल्लिका, यूथिका, कुन्द और मदयन्ती कुसुमराजि, विन्ध्यगिरिका सौरभ सम्पादन करती है। मालती कुसुमावलीपर भ्रमणशील भ्रमर-पंक्ति,—गोपियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये भ्रमरच्छलसे आगत श्रीकृष्णकी तरह, विन्ध्यपर्व्वतको अलङ्कृत करती है। विन्ध्य—नाना मृगगणसे परिव्याप्त, विविध पक्षिकूजनसे प्रतिध्वनित और बहुतर सरित्-सरोवर-पल्वल-प्रवाहसे आवृत है। अनेका-नेक दिव्य जातिवृन्द, स्वल्प सौन्दर्य्य स्वर्ग भूमिको परित्याग करके सम्पूर्ण भोगा-भिलाष होसे मानो इस पर्व्वतपर आकर वास करते हैं। नारदने देखा, कि विन्ध्य-पर्व्वत इतस्ततः निपतित पुष्पसमूह द्वारा मानो अर्घ्य प्रदान कर रहे हैं, मयूरके कोकरवसे मानो वह दूरसे स्वागत प्रश्न कर रहे हैं। इसके उपरान्त विन्ध्यगिरि, शतसूर्य्य-समप्रभ उज्ज्वलिताम्बर देवर्षि नारदको आकाशपथमें देखकर दूरसे उनकी ओर चले। ब्रह्म-नन्दन नारदके शरीर-तेजसे विन्ध्यगिरिकी कन्दराका अन्धकार दूर हुआ। गिरिने देवर्षिको आते देखकर मनका तम (दर्प) भी परित्याग किया। ब्रह्म तेजोभयसे गिरि डरे;—तब, साधु-जनके समादरकारी विन्ध्यने स्वभावतः कठिन होनेपर भी अपना काठिन्य परि-त्यागपूर्व्वक कोमलता अवलम्बन की। नारद, गिरिवरकी उभय मूर्त्तिमें कोमलता देखकर अतिशय आनन्दित हुए; साधुओंका चित्त विनय होके वशीभूत है। जो व्यक्ति स्वयं उच्चतर होनेपर भी अपने घर

आर्य बड़े छोटे सब व्यक्तियोंके सामने नम्रता अवलम्बन करते हैं, वही महत्त्व-सम्पन्न हैं; जो उस समय 'आत्मगौरवमें रहते हैं, वह महत्त्व-सम्पन्न नहीं हैं। इन गिरिवरने उन्नत-शिखर होनेपर भी प्रणत-कन्धर होकर भूतल-विलुण्ठित मस्तकसे महर्षि नारदको प्रणाम किया। नारदने गिरिवरका करद्वय धारणपूर्व्वक उठाकर और आशीर्व्वाद द्वारा उन्हें अभिनन्दित करके, गिरिवरके उच्चतर हृदय अपेक्षा भी उन्नत, उनके निर्द्दिष्ट आसनपर बैठा दिया। विन्ध्यने,—दधि, मधु, घृत, जलार्द्र अक्षत, दूर्व्वा, तिल, कुश और पुष्प इस अष्टाङ्ग अर्घ्य द्वारा नारदकी पूजा की। मुनि-वरके अर्घ्य ग्रहण करनेपर, गिरिने श्रान्त देवर्षिकी पादसेवादि की, इसके उपरान्त उन्हें गतश्रम देखकर अवनत भावसे कहने लगे,—मुने! आपके चरणरज द्वारा आज मेरा रजोगुण अपहृत हुआ, आपकी देहप्रभासे मेरा आन्तरिक तम भी दूर हुआ। आज मेरी सम्पत्ति सफल हुई; आज मेरा क्या ही सुदिन है! चिरका-लार्ज्जित प्राक्तन सुकृतराशिका आज फल हुआ। आज पर्व्वतोंमें मान्यपर्व्वतत्त्व मेरा हुआ। मुनि यह बात सुनकर किञ्चित निश्वास परित्याग करके चुप रहे। तब गिरिवरने सम्भ्रान्त चित्तसे फिर कहा, हे सर्व्वार्थ-कोविद ब्रह्मन्! यह कहिये, कि निश्वास परित्यागका क्या कारण है। त्रैलोक्यमें आपकी अविदित प्रार्थनीय वस्तु और कोई नहीं देखी; मैं प्रणाम करता हूं, मुझपर यदि दया हो, तो प्रश्नका उत्तर प्रदान कीजिये। आपके आगमन-सम्भूत आनन्द-सन्दोहसे मेरा कण्ठरोध होता है, इसलिये बहुत बातें कह नहीं सकता, फिर भी एक बात कहता हूं; पूर्व्वपुरुषगणने सुमेरु प्रभृति पर्व्वतमें जो पृथिवी धारण-शक्ति कीर्त्तन की, वह सब पर्व्वतोंकी उद्देश करके; किसी एक पर्व्वतमें वह शक्ति नहीं है। और मैं अकेला पृथिवी धारण कर सकता हूं। एक हिमालय ही सज्जनोंमें मान्य है; उसका कारण भी है—हिमालय, गौरीका पिता, पर्व्वतका राजा, और शिवका श्वशुर है। (नहीं तो पार्व्वत्यगुणमें वह मान्य नहीं हैं) स्वर्णपूर्ण, रत्नसानुसम्पन्न और देवगणकी आवासभूमि होनेपर भी, सुमेरुको मैं मान्य नहीं समझता। पृथिवी-धारण-शील असंख्य शैल हैं, वह भी सज्जनगणके मान्य हैं सही, किन्तु अपनी अपनी जगह ही वह सब माननीय हैं। आश्रित सन्देह नामक राक्षसगणकी देहपर संशय करने होसे उदयगिरिकी दयाका परिचय मिलता है; निषध पर्व्वतमें औषधि नहीं है, अस्तगिरि प्रभाहीन है। नीलपर्व्वत नीला, मन्दरका मन्द प्रकाश, मलय सर्पोंकी आवासभूमि, रैवत पर्व्वत धनरक्षा नहीं करता। हेमकूट त्रिकूट प्रभृति पर्व्वतोंका उत्तर पद ही कूट है, किष्किन्ध, क्रौञ्च

और सब पर्व्वतादि भूभार-सहनमें उपयुक्त नहीं हैं। विन्ध्यकी यह बातें सुनकर नारदने मन ही मन चिन्ता की, कि अति अहङ्कार महत्त्वका कारण नहीं है। जिनके शिखर मात्र दर्शनसे सज्जनोंकी मुक्ति होती है वह श्रीशैल प्रभृति अमल शोभासम्पन्न कितने ही पर्व्वत वर्त्तमान हैं। आज इस पर्व्वतक बज्र अवलोकन करूंगा। नारदने यह चिन्ता करके कहा,—पर्व्वतोंका सामर्थ्य प्रदर्शन पूर्व्वक तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है; किन्तु सब पर्व्वतोंमें एक सुमेरु तुम्हारी अवज्ञा करता है। मैंने इसीलिये निश्वास परित्याग किया था, तुमसे यह कह भी दिया। अथवा आत्म-निष्ठ माहश व्यक्तिके लिये इस चिन्ताका प्रयोजन क्या है? तुम्हारा मङ्गल हो। यह कहकर नारदने गगनपथमें प्रस्थान किया। मुनिवरके जानेपर उद्विग्नचित्त विफलमनोरथ विन्ध्य बहुत चिन्तित होकर आत्मनिन्दा करने लगी,—शास्त्र कलाज्ञान-हीन व्यक्तिके जीवनको धिक्, निरुद्यम व्यक्तिके जीवनको धिक्, ज्ञातिपराजित व्यक्तिके जीवनको धिक् और विफलमनोरथ व्यक्तिके जीवनको धिक् है। जो व्यक्ति, शत्रुसे पराजित होता है,वह दिनको भोजन, रातको शयन और निर्ज्जनमें क्या आनन्द लाभ कर सकता है? वह चिन्ता-सन्ताप-समूह जैसी पीड़ा देता है, दावानल पीड़ा भी मुझे उतना पीड़ित कर नहीं सकता। प्राचीन लोगोंने ठीक ही कहा है, कि चिन्ताकी मूर्त्ति अति भयङ्कर होती है। औषध, उपवास वा अन्य किसी उपायसे चिन्ता रोगका उपशम नहीं होता। मनुष्यका चिन्ताज्वर,—क्षुधा, निद्रा, बल, रूप उत्साह, बुद्धि, श्री और जीवन निश्चय ही हरण कर लेता है। छः दिन अतीत होनेपर, ज्वर जीर्णज्वरके नामसे अभिहित होता है, किन्तु यह चिन्ताज्वर प्रत्येक दिन नूतनत्वको प्राप्त होता है। इस चिन्ताज्वरमें धन्वन्तरि धन्यवाद नहीं पाते; चरककी भी गति इस स्थलमें नहीं है; अश्विनीकुमारद्वय भी इस ज्वरमें सफलता लाभ कर नहीं सकते। क्या करूं, कहां जाऊं, सुमेरुको कैसे जय करूं? क्या छलांग मारकर सुमेरुके माथेपर जा पड़ूं?—या यह न होगा। पूर्व्वकालमें हमारे सगोत्र किसी पर्व्वतके इन्द्रको क्रोधान्वित करनेसे इन्द्रने हम लोगोंको पक्षहीन कर दिया है। पक्षहीन व्यक्तिकी सभी चेष्टा विफल हैं। अथवा सुमेरु ही मुझसे स्पर्द्धा क्यों करता है?—ओह! क्यों नहीं कर सकता, भूभारवाही प्राय ही भ्रान्तियुक्त होते हैं। नहीं तो सत्यलोक-निवासी ब्रह्मचारी वेदज्ञ नारदका क्या मिथ्या बोलना सम्भव है? अथवा मद्विध व्यक्तिके युक्तायुक्त विचार करनेका प्रयोजन नहीं है; जो लोग विक्रम प्रकाश करनेमें असमर्थ हैं, उन्हींका चित्त विचार किया करता है। अथवा इस

अब विफल चिन्ताका प्रयोजन क्या है? विश्वकर्त्ता विश्वेश्वरके शरणापन्न होता हूँ, वही हमें कर्त्तव्य-बुद्धि प्रदान करेंगे। यह सभी कीर्त्तन करते हैं, कि त्रैलोक्यमें विश्वनाथ ही अनाथनाथ हैं। विन्ध्यने क्षणकाल सोचकर स्थिर किया,—"यही निश्चय होगा, ऐसा ही करूंगा, कल विलम्ब न करूंगा, वृद्धाभ्युख शत्रु और रोगसे विचक्षण लोग उपेक्षा नहीं करते। ग्रह-नक्षत्रगणके साथ सूर्य्य निश्चय सुमेरुको बलाधिक समझकर प्रदक्षिणा करते हैं।" विन्ध्यगिरिने इस तरह सुमेरुके साथ विवादमें कृतसङ्कल्प होकर अपनी देह सातिशय परिवर्द्धित की। उनकी देह ऐसी उन्नत हुई, मानो शृङ्गश्रेणी द्वारा विन्ध्यपर्व्वत असीम आकाशपथका अन्तभाग निर्द्देश करने लगा। किसीके साथ कभी किसी व्यक्तिका विवाद करना विधेय नहीं है। विवाद यदि एकान्त कर्त्तव्य ही है, तो ऐसे भावसे करना चाहिये, कि कोई व्यक्ति उपहास न करे। इस तरह विन्ध्याचलने रविमार्ग रोककर मानो कृतकृत्यता प्राप्त होकर स्वास्थ्य लाभ किया। प्राणिगणका भविष्यत् सर्व्वथा ही अदृष्टके अधीन है! विन्ध्यपर्व्वत आनन्दके साथ सोचने लगा, कि आज सूर्य्यदेव जिसे प्रदक्षिणा करके जावेंगे, वही पर्व्वत कुलीन, उसीका यथार्थ सम्पद और वही व्यक्ति वास्तविक सर्व्वापेक्षा लोकपूजित होगा। जबतक कोई व्यक्ति कभी अपनी शक्ति प्रदर्शन नहीं करता, तभीतक लोग उसे लङ्घन कर सकते हैं। इसका दृष्टान्त काठकी आग है। ऐसी अग्नि जबतक प्रज्वलित नहीं होती, तभीतक लोग उसका लङ्घनादि कर सकते हैं। इसी तरह विन्ध्यपर्व्वत पूर्व्वोक्त अति विपुल चिन्ताभारसे मुक्ति लाभ करते हुए सदाचार-रत ब्राह्मणकी तरह सूर्य्योदयकी प्रतीक्षा करके दृढ़ निश्चयके साथ अवस्थिति करने लगे।

प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

सत्यलोक-वर्णन ।

व्यासने कहा, कि यह स्थावर-जङ्गमकी आत्मा, तमोरिपु सूर्य्य, अपना सुपवित्र किरणजाल विस्तार, साधुगणको धर्म्मानुष्ठानमें प्रवर्त्तन, तामस भावका दूरीकरण, निशाकालमें मुकुलितानना प्रियतमा कमलिनीको प्रबोधन, देवादि उद्देशसे हव्यकव्य भूतवलि प्रदानके प्रवर्त्तन, पूर्व्वाह्ण, अपराह्ण और मध्याह्ण स्वरूप क्रिया-कालके सूचनारम्भ, असज्जनके मन और मुखके तमोगुणका अवस्थान निर्द्देश और रजनीकाल-कवलित जगतको फिर जीवन प्रदान करते हुए उदयाचलमें उदित हुए। रविके उदय होनेसे साधुगणकी वृद्धि होती है। इसी सदाःसफल परोपकार प्रभाव होसे रवि, सन्ध्याको अस्तमित (विनष्ट) होकर प्रातःकाल पुनरुदित (पुनर्जीवित) हुआ करते हैं। दिक्-

प्रति सूर्य्य, खण्डिता पूर्व्वदिगङ्गनाको सानुराग करस्पर्शसे आश्वासित करके, मानो विरहज्वलिता आग्नेयी कामिनीको एक प्रहर काल सम्भोग करके सुचतुरा दक्षिण-दिग्वधूकी ओर गमन करने लगे। लवङ्ग, इलायची, मृगनाभि, कर्पूर और चन्दनसे दक्षिण दिग्वधूका अङ्ग चर्च्चित है; ताम्बूल-रागसे उनका अधरोष्ठ रक्तवर्ण है; द्राक्षा-फलस्तवक, उनके उत्तम कुचाग्र हैं; लवली-लता उनकी बाँहें हैं; अशोकपल्लव उनकी उंगलियां हैं; मलय समीरण उनका निःश्वास है; क्षीरोदसागर उनका वसन है, त्रिकुट पर्व्वतस्थित काञ्चनराजिद्वारा उनका अङ्ग सुरञ्जित है; सुवेलपर्व्वत उनके नितम्ब हैं; कावेरी और गोदावरी नदी उनकी जांघें हैं; चोलदेश उनकी कांचुली है; सह्य और दर्द्दुर पर्व्वत उनके स्तनयुगल हैं; काञ्चीपुरी उनकी काञ्ची-भूषण है। महाराष्ट्र रमणीके सुकोमल-वाग्विलाससे मनोहरा उस सद्गुणशालिनी दक्षिणदिगङ्गनाको कोल्हापुराधिष्ठात्री महालक्ष्मीने अभीतक परित्याग नहीं किया है। अवलीलाक्रमसे समग्र गगनमण्डल-गामी सूर्य्य-तुरङ्गवृन्द जब और अग्रगमनमें समर्थ नहीं हुए, तो सारथि अरुण कहने लगे, —हे मानो! मानोन्नत विन्ध्यने मेरुके साथ समकक्षताकी स्पर्द्धा की है, इसीलिये आपसे प्रदक्षिणा पानेकी आशासे गगनपथ रोध करके अवस्थित है। हे मानो! आप प्रति-दिवस जैसे सुमेरु पर्व्वतको प्रदक्षिणापूर्व्वक जाया करते हैं, उसी तरह "मुझे भी प्रद-क्षिणा कीजिये" इस अभिलाषसे विन्ध्य गिरिने दर्पके साथ गगनमार्ग अवरोध किया है। सूर्य्य अरुणकी बात सुनकर मन ही मन सोचने लगे, - अहो गगनमार्ग भी अव-रुद्ध हुआ, यह अति विचित्र है! व्यासने कहा, कि सूर्य्यदेव बलवान् होकर भी शून्य पथमें और क्या कर सकते थे? त्वरावान् होनेपर भी अकेला कौन व्यक्ति कौन रुद्ध-मार्ग लङ्घन कर सकता है! जो सूर्य्य राहुग्रस्त होकर भी क्षणकाल अवस्थान कर नहीं सकते, वह भी शून्यपथमें निरुद्ध हुए, क्या करें, विधि ही बलवान् है। जो निमेषार्द्धमें दो सहस्र दो सौ दो योजन पथ अतिक्रम करते हैं, वह भी बहुत देरतक स्थिर भावसे रहे। बहुत समय अतीत हुआ। पूर्व और उत्तरदिकस्थित प्राणिगण चण्डांशुके अंशुजालपातसे सन्तप्त और नितान्त पीड़ित हुए और पश्चिम और दक्षिणदिक्स्थित प्राणिनिचय शयनावस्था होमें निद्रार्द्ध-निमीलितनयनसे ताराग्रह सङ्कुल गगनम-ण्डल देखने लगे। वह लोग सोचने लगे, – यह दिन नहीं है, कारण सूर्य्य नहीं हैं, रात भी नहीं है, कारण चन्द्र नहीं हैं और अश्विन्यादि नक्षत्र नहीं हैं; अतएव कुछ भी लक्ष्य नहीं किया जाता, कि यह कौन समय है। ब्रह्माण्ड क्या अकाल होमें लय हो जावेगा? नहीं,—

ऐसा होनेपर, अब भी प्रलय-पयोधि चारो ओरसे आकर पृथ्वी प्लावित क्यों नहीं करते? स्वाहास्वधावषट्कारविवर्ज्जित जगतमें पञ्च-यज्ञ क्रिया लोपसे त्रिभुवन कम्पित हुआ। सूर्योदय होने हीसे यज्ञादि क्रियाकलापका अनुष्ठान हुआ करता है और यज्ञादि द्वारा देवगणकी तृप्ति साधित होती है, अतएव इस विषयमें सूर्य्य ही कारण हैं। चित्रगुप्त प्रभृति सभी सूर्य्य हीसे समय निर्णय किया करते हैं; सूर्य्य ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं। उन्हीं सूर्य्यके गतिरोधसे त्रिभुवन स्तम्भित हुआ। सभी लोग जो जिस जगह थे, वह उसी जगह चित्रितकी तरह रह गये। एक ओर नैश तिमिरसे, दूसरी ओर दिनकी धूपसे बहुत कुछ विनष्ट हुआ; जगत् भीतिविद्रुत हुआ। इसी तरह सुरासुर-नर-नागलोकके व्याकुल होनेपर "आह असमयमें यह क्या हुआ" कहकर प्रजा रोती हुई इधर उधर दौड़ने लगी। तब सब देवता यह सब देखकर ब्रह्माके शरणा-पन्न हुए और "रक्षा करो, रक्षा करो" कहकर विविध स्तोत्रसे स्तव करने लगे;—विराट् स्वरूप और हिरण्यगर्भरूपी ब्रह्माको नमस्कार; अविज्ञात-स्वरूप, कैवल्य-रूपी आनन्दमयको नमस्कार। जिनसे देवगण भी सम्पूर्णरूपसे अवगत नहीं है और मन भी जहां कुण्ठित है, जो वाक्यके भी अगोचर हैं,—उन्हीं विद्यात्माको नम-स्कार। योगिगण चाञ्चल्यरहित होकर प्रणिधानके साथ हृदयाकाशमें ज्योतिरूपी जिनका दर्शन करते हैं, उन्हीं श्रीब्रह्माको नमस्कार। जो कालसे भिन्न अथच काल स्वरूप हैं, जो स्वेच्छाक्रमसे पुरुष और जो गुणत्रयस्वरूपा प्रकृति हैं,—उन्हें नम-स्कार। जो सत्वगुणके आश्रयसे विष्णु रूपसे जगत्का पालन, रजोगुण अवलम्बन करके ब्रह्मारूपसे जगतकी सृष्टि और तमोगुण अधिकार करके रुद्ररूपसे जगत्का सहार करते है, उन्हें नमस्कार है। बुद्धि स्वरूपी ब्रह्माको नमस्कार है; त्रिविध अहङ्काररूपी ब्रह्माको नमस्कार; पञ्च तन्मात्र और पञ्चकर्म्मेन्द्रिय स्वरूप ब्रह्माको नमस्कार, मन और पञ्चज्ञानेन्द्रिय स्वरूप ब्रह्माको नमस्कार। पृथिव्यादि पञ्चभूत स्वरूप और विषयात्मक ब्रह्माको नमस्कार। जो ब्रह्माण्ड स्वरूप और ब्रह्माण्डके मध्य-वर्त्ती हैं, उन्हें नमस्कार। नये पुराने विश्वरूपी ब्रह्माको नमस्कार है। अनित्य और नित्यस्वरूप—कार्य्यकारण-स्वामीको नमस्कार। तुम समस्त भक्तगणके प्रति कृपा करके स्वेच्छाक्रमसे शरीर परिग्रह करते हो। सब वेद तुम्हारे ही विश्वास हैं; सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे अन्तर्निहित बीजसे उत्पन्न है; समस्त भूतगण तुम्हारे पदतल, स्वर्ग तुम्हारे मस्तकसे उद्भूत, तुम्हारी नाभिसे आकाश उत्पन्न, तुम्हारे सब लोम वनस्पति, तुम्हारे मनसे चन्द्र उत्पन्न हुए

और हे प्रभो! तुम्हारे चक्षुसे सूर्य्य उत्पन्न हुए हैं। हे देव! तुम्हीं सब हो और तुम्हींमें सब है। जगत्‌में तुम्हीं स्तोता, तुम्हीं स्तुति और तुम्हीं स्तव्य हो। हे ईश! तुम्हीं इस समस्त जगत्‌में व्यापे हुए हो अतएव तुम्हें नमस्कार,—पुनः पुनः नमस्कार। देवगण, ब्रह्माका इस तरह स्तवकर भूमिपर दण्डवत् पतित हुए। तब ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर देवगणसे कहने लगे,—हे प्रणत सुरगण! तुम्हारी इस यथार्थ स्तुति द्वारा मैं सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम उठो; मैं प्रसन्न हुआ हूं, अभिलषित वर प्रार्थना करो। जो व्यक्ति पवित्र होकर श्रद्धाके साथ प्रति दिन इस स्तुतिद्वारा मेरा अथवा महादेवका अथवा विष्णुका स्तव करेगा, हम लोग (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) सर्व्वदा उसके प्रति सन्तुष्ट होकर उसे उसका सर्व्वाभीष्ट,—पुत्र, पौत्र पशु, धन, सौभाग्य आयु, आरोग्य, अभय, रणमें जय, ऐहिक-पारत्रिक भोग और निर्व्वाणमुक्ति प्रदान करेंगे और जो जो उसका इष्टतम है, वह सब उसका होगा। अतएव सर्व्वप्रयत्नसे यह उत्तम स्तव पाठ करना लोगोंका कर्त्तव्य है। सर्व्वसिद्धिप्रद यह स्तव अभीष्टद नामसे ख्यात है। देवगण प्रणाम करके उठे, फुल ब्रह्मा फिर उनसे बोले,—तुम लोग सुखभावसे रहो; यहां भी व्याकुलभावसे क्यों हो? देखो यहां यह मूर्त्तिमान् चारो वेद हैं, यह सब विद्या, दक्षिणासह यज्ञसकल यहं हैं, यह सत्य हैं, यह धर्म्म हैं, यह तपस्या हैं, यह दम हैं, यह ब्रह्मचर्य्य—यह करुणा है, यह सत्यस्वरूपी हैं, श्रुति स्मृति और पुराणार्थ चारितार्थ चरितार्थ जनगण यह हैं;—यहां. क्रोध, मात्सर्य्य, लोभ, काम अधैर्य्य, भय, हिंसा, कुटिलता, गर्व्व, निन्दा असूया और अशुचि व्यक्ति कहीं भी नहीं हैं। जो सब ब्राह्मण वेदरत है; तपोनिष्ठ और तपोधन हैं, जो उत्कृष्ट मासोपवास व्रत हैं, पक्षमासव्रत और चातुर्मास्यादि व्रतके अनुष्ठाता हैं, जो सब रमणियां पतिव्रता हैं; इनके अतिरिक्त जो जो ब्रह्मचारी हैं और जो परदारविमुख हैं,—सुरगण! देखो, वह सब यहीं हैं। यह सब मातृपितृभक्त हैं, इन्होंने गोरक्षाके लिये मृत्यु स्वीकार की थी। जिन सबने फलाभिसन्धि न करके व्रत, दान, जप, यज्ञ, स्वाध्याय, ब्राह्मण-तृप्तिसाधन; तीर्थसेवा, तपस्याचरण, परोपकार और सदाचारादि कर्म्म अनुष्ठान किये हैं, वह सब यही हैं। गायत्री जपमें निरत, अग्निहोत्र-परायण, दिमुखी गो-प्रदानकर्त्ता, कपिला-गो-दाता, निःस्पृह, सोमपायी, विप्रपादोदकपायी, सरस्वती-तीर्थमें मृत, ब्राह्मण सेवापरायण, प्रतिग्रह समर्थ होकर भी प्रतिग्रहपराङ्मुख और तीर्थ प्रतिग्रह-पराङ्मुख—हमारे प्रिय वह सब ब्राह्मण यही हैं। जिन सब निर्म्मलात्मा मनुष्योंने माघ महीनेमें अकेल

रविके मकर-राशि-स्थित होनेपर प्रयागमें प्रत्यूषमें स्नान किया है,—सूर्य्यसम तेजस्वी, वह सब यही हैं। कार्त्तिक महीनेमें वाराणसीमें पञ्चनदमें तीन दिनोंतक जिन्होंने स्नान किया है, वह शुद्धदेह, सुनिर्म्मल पुण्यभागी व्यक्ति यही हैं। जिन्होंने मणिकर्णिकामें स्नान करके बहुत धनदानसे ब्राह्मणगणको प्रीत किया है, वह यही हैं—सर्व्वभोगसम्पन्न होकर एक कल्पतक हमारे लोकमें अवस्थान करेंगे, अनन्तर उसी पुण्यप्रभावसे काशीप्राप्त होकर, विश्वेश्वरके प्रसादसे निश्चय ही मोक्ष लाभ करेंगे। अविमुक्त क्षेत्रमें मनुष्य अल्प सत्कर्म्म करनेपर भी उसके फलसे जन्मान्तरमें मुक्ति पाते हैं। क्या ही आश्चर्य्य है! विश्वेश्वर-क्षेत्रमें मरणसे भी लोगोंको भय नहीं होता, वहां सभी मृत्युको अतिथिकी तरह प्रिय समझकर, उसकी अपेक्षा किया करते हैं। जिन्होंने कुरुक्षेत्रमें ब्राह्मणगणको उत्तम धन दान किया है, यह वही निर्म्मल कलेवर हमारे समीप अवस्थान करते हैं। गया धाममें ब्रह्माके निकट उपस्थित होकर जिन्होंने ब्राह्मण मुखसे पितामहगणका तृप्तिसाधन किया है, यह उनके पितामहगण अवस्थान करते हैं। हे देवगण! स्नान, दान, जप किम्वा पूजा द्वारा हमारा लोक नहीं मिलता; किन्तु एकमात्र ब्राह्मणगणके तृप्तिसाधन होसे यह लोक प्राप्त होता है। उदुखल, मूषल प्रभृति सब गृहोपकरण और शय्यासमन्वित गृह जिन्होंने दान किया है, यह उन्हींके हर्म्म्यनिचय हैं। जो लोग वेद पाठशाला निर्म्माण करा देते हैं, जो लोग वेदाध्ययन करते हैं, जो लोग विद्यादान करते हैं, जो लोग पुराण श्रवण करते हैं, जो लोग पुराण दान करते हैं, जो लोग धर्म्मशास्त्र दान करते हैं और जो लोग अन्यान्य पुस्तक भी दान करते हैं, हमारे इस पुरमें उन्हींका वास होता है। जो लोग यज्ञके लिये, विवाहके लिये अथवा व्रतके लिये ब्राह्मणको प्रचुर धनदान करते हैं, वह लोग वसुतुल्य तेजस्वी होकर यहां अवस्थान करते हैं। जो लोग वैद्य पोषण करते हुए चिकित्सालय स्थापन करते हैं, वह सर्व्वभोग-समन्वित होकर कल्पान्त पर्य्यन्त इसी जगह वास करते हैं। जो लोग दुष्टगणके अवरोधसे तीर्थसमूह मुक्त करते हैं, वह लोग हमारे अन्तःपुरमें, हमारे औरस पुत्रगणकी तरह स्नेहके पात्र होकर रहते हैं। ब्राह्मणगण,—विष्णुके, हमारे और शिवके अतीव प्रिय हैं, हमीं साक्षात् ब्राह्मण स्वरूपमें भूतलपर विचरण करते हैं। एक कुल ही—ब्राह्मण और गौ,—इन दो भागमें विभक्त है; एक भाग (ब्राह्मण) में मन्त्र और एक भाग (गौ) में हविः अवस्थान करते हैं। ब्राह्मणगण सार्व्वभौमिक जङ्गमतीर्थ स्वरूपमें निर्म्मित हुए हैं; मलिन व्यक्तिगण उनके

वाक्यसलिल द्वारा पवित्र हुआ करते हैं। सब गो भी अतुलनीय पवित्र हैं; सब गो परम मङ्गल स्वरूप हैं, उनका खुरोत्थित रेणु गङ्गाजलके तुल्य है। गो-शृङ्गके अग्रमें सब तीर्थ, खुराग्रमें यावतीय पर्व्वत अवस्थित और शृङ्गद्वयके मध्यस्थलमें महेश्वरी गौरी अवस्थान करती हैं। गो-दान दर्शन करके दाताके प्रपितामहगण नृत्य क्रिया करते हैं, यावतीय ऋषिगण प्रीत होते हैं और देवगणके साथ मैं तुष्ट होता हूं; और दारिद्र्य और व्याधिवृन्दके साथ पाप समूह अतिशय रोदन करते हैं। गो ही समस्त लोककी धात्री और सर्व्व प्रकारसे मातृ तुल्या है। जो व्यक्ति गोका स्तव, नमस्कार और प्रदक्षिण करता है, उसे सप्तद्वीपा वसुन्धरा प्रदक्षिण करनेका फल मिलता है। "जो सर्व्व भूतकी लक्ष्मीस्वरूपा और जो देवगणके बीच अवस्थिता हैं, वही देवी धेनुरूपसे हमारे पाप विनाश करें। जो विष्णुकी वक्षःस्थलवासिनी लक्ष्मी हैं, जो अग्निकी स्वाहा और पितृमुख्यगणकी स्वधास्वरूपा हैं,वही धेनु सतत हमारे पक्षमें वरप्रदायिनी हों। जिनका गोमय यमुना तुल्य है, मूत्र नर्म्मदा सदृश और दूध गङ्गाके समान, उनकी अपेक्षा और पवित्र क्या है? जिस कारण गो सकलके अङ्गमें चतुर्द्दश भुवन अवस्थान करते हैं, अतएव गो समूहसे इह-परलोक हमारा शुभ हो।" जो व्यक्ति यह मन्त्र उच्चारण करके धेनु वा अन्य प्रकारकी गो, उत्तम ब्राह्मणको दान करते हैं, वह सर्व्वापेक्षा विशिष्ट पुण्यवान् हैं। विष्णुने, शिवने और मैंने गो गुणावली विचारकर यह प्रार्थना विधान किया है; —गोगण, हमारे सम्मुख अवस्थान करें; गोगण, हमारे पृष्ठदेशमें अवस्थिता हों; गोगण हमारे हृदयमें रहें;—हम गोगणमें वास करें। जो भाग्यवान् व्यक्ति अपना सर्व्वाङ्ग गो-लाङ्गुल द्वारा मार्ज्जना करता है,—अलक्ष्मी, कलह और सब रोग उसके अङ्गसे दूर चले जाते हैं। गो, ब्राह्मण, वेद, सती, रमणी, सत्यवादी, निर्लोभ और वदान्य,—इन सातोंके प्रभावसे पृथिवी टिकी हुई है। यह कथित है; कि हमारे लोकके ऊपर वैकुण्ठ लोक उसके ऊपर कौमार लोक; उमालोक कौमार लोककी अपेक्षा उच्चतर है, उसके ऊपर शिव लोक; गोलोक शिवलोकके समीपवर्त्ती है, वहां शिवप्रिया सुशीला, प्रभृति गो-मातृगण अवस्थिति करती हैं। जो लोग गो-शुश्रुषा-निरत वा गोदाता हैं, वह सब मनुष्य इन्हीं लोकोंसे किसी एकमें सर्व्व समृद्धिसम्पन्न होकर अवस्थान करते हैं। जहां सब नदियां दुग्धमयी हैं, पायस जहां कर्द्दम, जरा जिस जगह क्लेश नहीं पहुंचाता,—गो-प्रदाता जनगण, वहीं जाते हैं। श्रुति, स्मृति, पुराणमें जिनका ज्ञान है और तदुक्त आचारपर जो चला करते हैं, वही प्रकृत ब्राह्मण हैं; दूसरे ब्राह्मण

नामधारी मात्र हैं। श्रुति और स्मृति ब्राह्मणके नेत्रद्वय हैं; पुराण ब्राह्मणका हृदय है; श्रुति स्मृति विहीन ब्राह्मण अन्धा है; जो श्रुति स्मृतिसे एक विषयमें अनभिज्ञ हैं, वह काने हैं; किन्तु पुराणानभिज्ञ अतएव हृदय-शून्य व्यक्तिकी अपेक्षा अन्धा वा काना भी अच्छा है। कारण श्रुति और स्मृति उभयोक्त धर्म्म ही पुराणमें कथित हैं। सर्व्वत्र सुखाभिलाषी व्यक्ति पूर्व्वोक्त उत्तम ब्राह्मण हीको गोदान करे। नामके ब्राह्मणको गोदान न करे; कारण, असत् ब्राह्मणको गोदान करनेसे, दाता अधोगामी होता है। धर्म्म जाननेका जिसका अभिलाष है, पापकी ओरसे जिसे अत्यन्त भय है,—वही व्यक्ति सब पुराण सुने; पुराण—धर्म्मका मूल है। चतुर्द्दश विद्याओंमें पुराण ही उत्तम दीप है; उसी पुराणदीपका प्रकाश पानेसे अन्धा मनुष्य भी संसारसागरमें कहीं भी निपतित नहीं होता। मेरे लोकलिप्सु व्यक्तिगण पुराणश्रवण, गङ्गातीरमें वास और ब्राह्मणगणका तृप्तिसाधान बराबर करें। हे देवगण! यह सत्यलोककी व्यवस्था और भयार्त्तगण जिसमें अभय हों, वह भी संक्षेपमें कीर्त्तन किया, तुम लोग निर्भय हो। विन्ध्यपर्व्वतने सुमेरुपर्व्वतके साथ स्पर्द्धा करके सूर्य्यका पथरोध किया है, इसीलिये तुम लोग आये हो; मैं तुम लोगोंके लिये इस विषयका उपाय निर्द्देश करता हूं। जहां स्वयं विश्वेश्वर, तारक ब्रह्म नाम उपदेश करते हुए अधिष्ठित हैं,—सबकी मुक्तिके हेतु उसी अविमुक्त महाक्षेत्रमें मित्रावरुणनन्दन महातपा अगस्त्य, प्रभु विश्वेश्वरमें मन अर्पणकर उग्र तपस्या कर रहे हैं, उनके पास जाकर उनसे प्रार्थना करो, वह तुम्हारा कार्य्य सिद्ध करेंगे। एक बार उन्होंने वातापि और इल्वलको भक्षण करके लोकसमुदयकी रक्षा की थी। उन मित्रावरुण-नन्दन मुनिवरमें, सूर्य्यकी अपेक्षा अधिक तेज है। वातापि-इल्वल भक्षणावधिसे जगत्में अगस्त्यका भय कौन नहीं करता? यह कहकर ब्रह्मा अन्तर्हित हुए। वह देवगण भी हर्षोत्फुल्ल-वदनसे परस्पर कहने लगे, अहो! हम लोग अतिशय धन्य हैं, कारण प्रसङ्गतः हम लोग शिवा, शिव, काशी और काशीपतिका दर्शन कर सकेंगे; अहो! बहुत दिनोंके उपरान्त हमारा मनोरथ सफल हुआ। वह चरणयुगल ही धन्य है, जो काशीकी ओर प्रस्थित हो, ब्रह्मोक्त वचन श्रवण-पुण्यसे हम लोग आज काशी जावेंगे। अधिकतर पुण्यबल होसे इस एक कार्य्यसे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे। काशीगमनके लिये कृतनिश्चय, हर्षोत्फुल्ल-नयनकमल, प्रहृष्टानन सुकृतार्थी देवगण यह कहते कहते काशीक्षेत्र गये। व्यासने कहा, कि संसारमें जो सब मनुष्य यह पवित्रतम आख्यान श्रवण करेंगे, वह लोग

इहलोकमें सर्व्वसुख भोग करते हुए वंश रक्षा करेंगे, इसके उपरान्त पुत्रदार सहित सर्व्वपापसे विमुक्त होकर सत्यलोकमें बहुत काल रहनेके उपरान्त मुक्तिलाभ करेंगे।

द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय।

देवगणका अगस्त्याश्रम गमन।

सूतने कहा, हे भगवन्! भूत-भव्य-पति! सर्व्वज्ञानमहानिधे! अच्युत! कहिये, कि देवगणने काशीमें उपस्थित होकर क्या किया? गुरुदेवके प्रमुखात् यह दिव्य कथा श्रवणकर मैं तृप्तिलाभ कर नहीं सकता। तपोनिधि अगस्त्य देवगण कर्त्तृक किस तरह प्रार्थित हुए और उनने उन्नत विन्ध्यगिरि होने किस तरह पूर्व्वमान प्राप्त किया?—मेरा मन आपके वाक्यरूप सुधा-समुद्रमें स्नान करनेके लिये उत्सुक हुआ है। पराशर-नन्दन मुनिवर वेदव्यास, यह प्रश्न सुनकर, श्रद्धालु निजशिष्य सूतके प्रश्नका उत्तर देने लगे। हे महाबुद्धि सूत! भक्ति श्रद्धा समन्वित होकर श्रवण करो और शुक-वैशम्पायनादि यह बालक-गण भी श्रवण करें। अनन्तर देवगण, महर्षिगणने एक साथ काशीधाममें उपस्थित होकर पहले अविलम्ब ही मणिकर्णिकामें यथाविधि सवस्त्र अवगाहनपूर्व्वक सन्ध्यादि नित्यकर्म्म किया और सन्ध्योपासनाके उपरान्त कुश, गन्ध और सतिल जल द्वारा तर्पण और अग्निष्वात्तादि पितृगणका तर्पण करके रत्न, काञ्चन, वस्त्र, अश्व, आभरण, धेनु, स्वर्णरौप्यादि निर्म्मित विचित्र पात्र, अमृत-वत् सुस्वादु पक्वान्न, शर्करा-संयुक्त पायस, दुग्धके साथ अन्न, धान्य, गन्ध, चन्दन, कर्पूर ताम्बूल, उत्कृष्ट चामर, तूल-प्रचुर कोमल पर्य्यङ्क, दीप दर्पण, आसन, शिविका दास दासी, विमान, पशु, गृह, विचित्र ध्वज-पताका, अमधर-सुन्दर चन्द्रातप, गृहो-पकरण सहित वर्षभोग्य भोज्य, जूता और खड़ाऊं — सब तीर्थवासियोंमें प्रत्येकको यह समस्त प्रदानपूर्व्वक परितृप्त किया। यती और तपस्वियोंके योग्य नया क्षौम वस्त्र, नानाविध चित्र कम्बल, दण्ड, कम-ण्डलु, मृगचर्म्म, कौपीन, उच्चमञ्च, परिचार-कोंके वेतनार्थ सुवर्ण, मठ, विद्यार्थियोंको अन्न, अतिथियोंके लिये अनेक धन, शास्त्रो-क्त पुस्तक, लेखकोंके लिये वृत्ति और बहु प्रकारका औषधदान सत्रदान, ग्रीष्म-कालमें पानीयशालाके लिये, हेमन्तमें मृदादिनिर्म्मित अग्निकुण्ड और काष्ठके लिये और वर्षाकालमें छत्र और आच्छा-दनके लिये बहु धनदान, रात्रिके अध्ययनके लिये प्रदीप जलानेका व्यय और पादा-भ्यङ्गादिकी व्यवस्था करके यती और प्रत्येक देवालयमें वृत्ति देकर पुराणपाठक नियोग, देवालयमें नृत्यगीतके लिये बहु धनव्यय, देवालय चूणकाम, देवालयका

जीर्णोद्धार और देवालयमें नाना प्रकारके चित्र बनानेके लिये मूल्य प्रदान, देवालयमें नाना विध रङ्ग, माल्यादि भूषण, आरतीका गुग्गुल, दशाङ्गादि धूप, कर्पूर वर्त्तिकादि, देवपूजोपकरणके लिये बहु धनदान, पञ्चामृत द्वारा और सुगन्धि स्नानद्रव्य द्वारा स्नान, देवताके लिये ताम्बूलादि मुखवास, नाना प्रकारके देवोद्यान, महापूजाके माल्यादि रचनाके लिये धनदान, शिव मन्दिरमें शङ्ख, भेरी, मृदङ्गादि वाद्यध्वनि त्रिकालमें होनेके लिये धनदान, देवालयमें घण्टा, गडवा, कुम्भ प्रभृति स्नानोपयोगी पात्रसमूह दान, शुक्लवर्ण मार्ज्जनवस्त्र दान, सुगन्धि यक्षकर्द्दम (अर्थात् कर्पूर, अगुरी, मृगनाभि और कट्फल एकत्र मिलित) प्रभृति प्रदान, जप, होम, स्तोत्रपाठ, उच्चस्वरसे शिव नाम-कीर्त्तन, रासक्रीड़ादि संयुक्त चलन और प्रदक्षिणा इत्यादि उत्तम क्रियाकाण्ड बार बार अनुष्ठान करते हुए चत्वारिंशत् प्रहर वास करके, विविध तीर्थ क्रिया। इसके उपरान्त दरिद्र और अनाथवर्गका तृप्तिसाधन, त्रिभू त्रिशर्व ईश्वरको प्रणाम, ब्रह्मचर्य्यादि नियमसे और पूर्व्वोक्तरूपसे तीर्थकृत्य सम्पादन और बार बार विश्वनाथ दर्शन, स्तवन और प्रणाम करके देवगण,—जहां अगस्त्य, अपने नामसे लिङ्ग-स्थापना और लिङ्गके सम्मुख कुण्डनिर्म्माण करके स्थिरचित्तसे शतरुद्रीय सूक्त जप करते हुए परोपकारके लिये अवस्थित थे—वहां गये। स्थाणुवत् अत्यन्त निश्चल, साधुहृदयवत् निर्म्मल, ज्वलन्त अग्निसदृश अङ्ग प्रत्यङ्गसे अतीव उज्ज्वल, द्वितीय सूर्य्यकेसे उन ऋषिको दूरसे देखकर देवगण सोचने लगे, कि क्या साक्षात् वड़वानल इस प्रकारकी मूर्त्ति धारण करके तपस्या कर रहे हैं? अथवा इनके तपस्तेजसे भीता सौदामिनी अभीतक चापल्य परित्याग कर नहीं सकी है। अथवा समस्त तेज इस ब्राह्मण-देहमें आश्रय लेकर शान्तपद प्राप्तिके लिये प्रशान्त परम तेजका ध्यान कर रहा है! इनके तीव्र तपःप्रभावसे तपनदेव अतिमात्र तापित और दहन भी दग्ध होता है; श्वापद-समूह, इनके इस आश्रमकी चारो ओर परस्पर स्वाभाविक वैर त्याग करके सात्त्विक भावसे अवस्थित दिखाई देता है। अहो, क्या ही आश्चर्य्य है! हाथी शुण्डदण्ड द्वारा भयरहित होकर सिंहका गात्र कण्डूयन कर रहा है और स्फीत-केशर केशरी शरभकी गोदमें सोने जा रहा है। स्फीत-निश्चलरोमा वलशाली शूकर, मुस्तागुच्छपर दृष्टि न्यस्त करके आत्मयूथ परित्यागपूर्व्वक अरण्य कुत्तोंके बीच विचरण कर रहा है। शूकर भूदार होनेपर भी, "काशीका सभी स्थान शिवलिङ्गमय है" इस भयसे—अन्य स्थानकी तरह यहां भूमि नहीं खोदता। तरक्षु, शूकर-शावकको गोदमें लेकर खिला रहा है। हरिण-

शावक, व्याघ्रशावकोंको हटाकर चपलपुच्छ फ़ेनायमान मुंहसे व्याघ्रीका स्तन्यपान करता है। बन्दर, लोमश भालूको सोता देखकर उसके लोमकानन मध्यस्थित मृत मत्कुण चपलाङ्गुलि द्वारा चुन चुनकर दन्ताग्रद्वारा भोजन कर रहा है। गोलाङ्गुल, रक्तमुख, नीलाङ्ग प्रभृति यूथनायक वानरगण जातिसुलभ स्वाभाविक मात्सर्य्य परित्याग करके एकत्र क्रीड़ा करते हैं। शशकगण, वृकको पीठपर विलुण्ठित होकर क्रीड़ा करते हैं। मूषिक चञ्चलवदनसे बिल्लीके कान कण्डूयन कर रहा है। बिल्ली मयूर-पुच्छ पुटसे आवृत होकर अत्यन्त सुखसे सो रही है। सर्प मयूरके कण्ठसे अपना कण्ठ घस रहा है! नकुल निजकुलोचित वैर परित्याग करके, खेलता हुआ कूद कूदकर सर्पके फणपर लोटता पोटता है। सर्प क्षुधान्ध होकर भी मुंहके पास विचरण करते हुए मूषिकको ग्रहण नहीं करता, मूषिक भी सर्पके भयसे भीत नहीं होता। व्याघ्र हरिणीको आसन्नप्रसवा देखकर करुणापूर्ण नयनसे हरिणीका दृष्टिपथ परित्याग करके दूर चला जाता है; व्याघ्री और मृगी दोनो ही हृष्टचित्त होकर परस्पर सखीकी तरह व्याघ्र और मृगका आचरण कीर्त्तन करती हैं। शम्बरमृग, उद्यतकार्म्मुक व्याधको देखकर भी, निर्भय हो निज पथ होपर विचरण करता है; व्याघ्र भी आकर उसका गात्रकण्डूयन कर देता है। रोहित मृग, निर्भय ही महिषका गात्र घर्षण करता है और चमरी मृगी व्याध-रमणीके केशपाशके साथ निज-पुच्छका परिमाण लेती है। अगस्त्यतेजोनियन्त्रित गवय और भल्लुक परस्पर तीव्र मात्सर्य्य त्यागकर एकत्र रहते हैं। मेषद्वय जयाभिलाषसे परस्पर मुण्डयुद्धके निमित्त सज्जित नहीं होते। शृगाल भी हरिणशावकको हाथ द्वारा कोमलभावसे स्पर्श करते हैं। "मांसभक्षणको धिक्! मांसभक्षण, इहलोकमें परलोकमें दुःखप्रद है अतएव आपदका आस्पद है;" यह सोचकर, श्वापदगण तृण गुल्मादि भक्षण करते हैं। जो पापयुक्त व्यक्ति अपने लिये मांसपाक करता है, वह भुज्यमान पशुकी देहमें जितने लोम हैं, उतने वर्ष नरक भोग करता है। जो दुर्म्मतिगण औरका प्राण नष्ट करके आत्मप्राण पोषण करता है, वह सब आकल्प नरक भोग करके, भक्षितपूर्व्व पशुगण कर्त्तृक भक्षित होता है। प्राण कण्ठगत होनेसे भी कभी मांस भक्षण करना उचित नहीं है, यदि भोजन करना ही हो, तो अपना मांस भोजन करना उचित है, दूसरेका नहीं। अगस्त्य सान्निध्य वशतः हिंसा-विमुखबुद्धि यह श्वापदगण वरञ्च भले हैं, किन्तु हिंसा परायण मनुष्य भी भले नहीं हैं। वक भी क्षुद्र सरोवरमें अग्रचारी मत्स्यगणको भी भोजन नहीं करता।

वृहत् मत्स्यगण भी चुद्र मत्स्यगणको भक्षण नहीं करते। "एक ओर मत्स्य-मांस, दूसरी ओर अन्यान्य समस्त मांस" यह श्रुतिवाक्य स्मरण करके ही मानो इन सबने मत्स्यभोजन त्याग कर दिया है। यह श्येन पक्षी भी वर्त्तिका पक्षीको देखकर पराङ्मुख होता है! क्या ही आश्चर्य है! मलिनाशय मधुपगण यहां भी भ्रमण करते हैं। मदिरापान-परायण अज्ञानान्ध व्यक्तिगण बहुकाल नरक भोग-कर मधुप योनि होमें पुनः पुनः जन्म ग्रहण करते हैं, अतएव शिववेत्तृगणने, पुराणमें यह सरल श्लोक कीर्त्तन किया है, कि कहां मांस और कहां शिवभक्ति; कहां मद्य और कहां शिवपूजा! शङ्कर, मद्यमांस-रत व्यक्तियोंसे दूर ही अवस्थान करते हैं,—शिवकी प्रसन्नताके सिवा किसी तरह भी भ्रान्ति नाश नहीं होता, इसीलिये शिवत-त्त्वज्ञानविवर्ज्जित मधुप (मद्यप) भ्रमर-गण भ्रमर करते हैं (भ्रमयुक्त होते हैं)। इसी प्रकार आश्रमस्थित पशु पक्षिगणको भी मुनिगणवत् हिंसा-विरत अवलोकन करके, देवगणने स्थिर किया,—कि इस काशीधामका ऐसा ही प्रभाव है। कारण, यहां पशु पक्षिगण भी विश्वेश्वरके अनु-ग्रहसे मृत्युकालके समय तारकब्रह्म उपदेश प्राप्त होकर, मोक्ष लाभ करते हैं। जो व्यक्ति इस क्षेत्रकी महिमासे अवगत है और विश्वाससम्पन्न होकर यहां वास करता है, विश्वेश्वर जीवन-मरणमें उसका परित्याग करते हैं। ज्ञानिगण इस अवि-मुक्त-क्षेत्रका माहात्म्य जानकर जिस तरह मुक्ति लाभ करते हैं, तिर्य्यक्‌जातियां काशी-माहात्म्य न जानकर भी इसी काशीधाममें देहत्यागकर, निष्पाप होकर उसी तरह मुक्ति लाभ कर सकती हैं। इस प्रकार विस्मयापन्न देवगण, मुनिवरके आश्रममें जाते जाते पक्षिकुलका दर्शनकर, पुनर्व्वार अतिशय आह्लादित हुए। देखा,—सारस-पक्षी सारसीके गलदेशपर अपना कण्ठ स्थापनकर स्थिरभावसे ठहरा हुआ है। हम लोग समझते हैं, कि सारस निद्रित नहीं हुआ, विश्वेश्वरका ध्यान करता है। हंसी, अपने चञ्चुपुटाग्र द्वारा कण्डूयन करती है और कामी हंसको पक्षकम्पन द्वारा निवारण करती है। चक्रवाकी, चक्रवाक कर्त्तृक अनुरुद्धा होकर भी कें कें शब्द द्वारा मानो कह रही है,—'हे कामु-कप्रधान! क्या यहां भी कामिता!!' कुञ्ज-मध्यस्थित पारावत उत्कण्ठित भावसे मनोहर ध्वनि करते हैं और इस भयसे कपोती उसे मना कर रही है, कि ध्यान-स्थित मुनि सुन लेंगी। मयूर, अगस्त्यके ध्यान भङ्गके भय होसे मानो कोकरव परि-त्याग करके निःशब्द हो गया है; चन्द्र-किरण-भोजी चकोरने मानो नक्तव्रत अवलम्बन किया है। क्या ही आश्चर्य है! "अपार संसार पारावारके पारकर्त्ता

विश्वनाथ हैं"—सारिका यह सार बात पढ़कर शुकपक्षीका ज्ञानसम्पादन कर रही है। कोकिल कोमल आलापके साथ ध्वनि करता हुआ मानो कहता है,—"कलि और काल काशीवासियोंका अनिष्ट साधन कर नहीं सकता।" दैत्य-दौरात्म्य वशतः असमयमें भी पातभय यन्त्रणा स्वर्गमें है, देवगण, पशु पक्षिगणका इस प्रकार काश्य दर्शन करके उस स्वर्गकी बहुत निन्दा करने लगे। देवताकी अपेक्षा काशीके यह पशु-पक्षी ही भले हैं ; कारण, देवताओंका पुनर्जन्म है, काशी-वासीका पुनर्जन्म नहीं। हमलोग स्वर्गवासी होनेपर भी काशीके पतितगणके भी तुल्य हो नहीं सकते, कारण, काशीमें पतनमें भय नहीं है और स्वर्गमें पतन-भय ही अधिक है। अन्यत्र विचित्र-छत्रच्छायामें निष्कण्टक राज्य भोग करनेकी अपेक्षा भी अर्थाभावसे मासोपवासादि करके भी काशीवास करना अच्छा है। काशीमें शशक, मशक अवहेलासे जो पद पाते हैं, अन्यत्र योगिगण योगशक्तिसे भी वह पदप्राप्त नहीं होते। हम लोग देवता हैं, किन्तु हमारी अपेक्षा काशीके दरिद्र भी भले हैं ; कारण, उन्हें यमसे भी कोई आशङ्का नहीं है और हमलोग एक पर्व्वत होसे यह दुर्द्दशा भोग कर रहे हैं। ब्रह्मा-दिवसके अष्टमांशमें लोकपाल, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह और तारागणके साथ इन्द्रत्वपद विनष्ट होता है ; किन्तु ब्रह्माका शत वर्ष अतीत होनेपर भी काशीवासीका विनाश नहीं है। इसलिये सब तरहके प्रयत्नसे काशीमें सदाचार करो। काशीधाममें जो सुख है, वह समूचे ब्रह्माण्डमें नहीं है, यदि हो, तो सभी काशीवासके अभिलाषी क्यों हों? सहस्र सहस्र जन्मान्तरके उपार्ज्जित पुण्य-पुञ्जके बदले यह काशीवास मिलता है। काशीवासी होनेपर भी शिवका क्रोधभाजन होनेसे सिद्धिलाभ किया नहीं जा सकता ; इसलिये निरन्तर शरणागत-पालक विश्वेश्वरके शरणागत रहना। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष—यह पुरुषार्थ चतुष्टय ही काशीमें मानो सम्पूर्ण हैं, ऐसे और किसी स्थानमें नहीं हैं। जो व्यक्ति अनिच्छासे भी घरसे विश्वेश्वर-मन्दिर गमन करता है, उसको प्रति पदक्षेपपर अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा अधिक धर्म्म होता है। जो व्यक्ति उत्तरवाहिणी गङ्गामें स्नान करके परम श्रद्धाके साथ विश्वेश्वर दर्शनके लिये गमन करता है, उसके धर्म्मकी अवधि नहीं रहती। गङ्गादर्शन, गङ्गास्पर्श, गङ्गास्नान, आचमन, सन्ध्या उपासना, जप, तर्पण, देवपूजन, पञ्चतीर्थदर्शन, इसके उपरान्त विश्वेश्वरदर्शन, विश्वेश्वरपूजा, धूपादिदान, प्रदक्षिण, स्तव, जप, नमस्कार, नृत्य, "देवदेव! महादेव! शम्भो! शिव! शिव! धूर्ज्जटे! नीलकण्ठ! ईश! पिनाकिन्! शशिशेखर! त्रिशूलपाणे! विश्वेश! रक्षा करो, रक्षा करो।" इस प्रकारका सङ्की-

र्त्तन मुक्तिमण्डपमें अर्द्धनिमेष उपवेशन, मुक्तिमण्डपमें बैठकर धर्म्मकथालाप और पुराण पाठ और श्रवण, अन्यान्य नित्य-नैमित्तिक कर्म्मका अनुष्ठान, अतिथि-सत्कार और परोपकार द्वारा उत्तरोत्तर धर्म्मलाभ वृद्धि होती है। शुक्लपक्षमें चन्द्र जैसे एक एक कला करके, वृद्धिप्राप्त होते हैं, उसी तरह काशीवासियोंकी धर्म्मराशि पद पदपर वृद्धिप्राप्त होती है। यह धर्म्मवृक्ष—जन-गणका सेवनीय है। इस वृक्षका वीज श्रद्धा है; विप्रपादोदक द्वारा यह सिंचा है; इसके शाखासमूह प्रसिद्ध चतुर्द्दश विद्या हैं; न्यायोपार्ज्जित धन, इसके पुष्प हैं; इसके स्थूल और सूक्ष्म दोनो फल काम और मोक्ष हैं। इस काशीधाममें अन्नपूर्णा सब अर्थ प्रदान किया करती हैं; गणपति ढुंढि यहां सब कामना पूर्ण करते हैं और विश्वनाथ अन्तकालमें कानमें तारकमन्त्र उपदेश करके सर्व्व प्राणीको भवबन्धन-मुक्त करते हैं। काशीमें धर्म्म—पूर्ण चतुष्पाद है। काशीमें अर्थ, अनेक प्रकारके हैं, काशीमें काम सब सुखका आश्रय है और ऐसा कौन श्रेयः है, जो काशीमें नहीं? धर्म्म अर्थ काम मोक्ष प्रदानके लिये गृहीत-देह विश्वेश्वर जहां अवस्थित हैं, उस काशीमें ऐसा होना विचित्र नहीं है। कारण, वह विश्वेश्वर अखण्डा-नन्दरूप, विश्वरूप हैं। अतएव, त्रैलोक्य भी काशीसदृश नहीं है। देवगणने यह बात कहते कहते मुनिवर अगस्त्यकी होम-धूम-सुगन्ध-पूर्ण, वेदाध्यायी छात्रवर्गसे परिवृत पर्णशाला देखी। अनन्तर मृगशावक ऋषियोंका उपग्रह-कुश मुंहमें लेकर श्यामक-अञ्जलि पानेकी आशासे ऋषिकन्यागणके पीछे पीछे गमन करते हुए जिस स्थानको अलङ्कृत करते हैं, जहां वृक्षशाखाविलम्बी आर्द्र वल्कल-कौपीन मानो विघ्नकारी मृगगणको बांधनेके लिये ही वागुराकी तरह चारो ओर फैले हुए हैं,—देवगणने उसी पर्णकुटीके प्राङ्गणमें पतिव्रता-शिरोमणि अगस्त्यपत्नी लोपामुद्राके पदाङ्क चिह्नित देखकर प्रणाम किया। इसके उपरान्त योगोत्थित, कानोंमें अक्षमाला धारण किये अवस्थित, यथायोग्य आसनपर आसीन, परमेष्ठिवत् श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषिको सम्मुख देखकर इन्द्रादि देवता सब प्रहृष्ट-वदनसे "जय जय" कहने लगे। मुनि अगस्त्यने भी उठकर उन सब देवताओंको योग्यभावसे बैठाया। इसके उपरान्त आशीर्व्वाद द्वारा अभिनन्दन करके आगमनका कारण पूछा। वेदव्यासने कहा, कि अभियुक्त होकर यह पवित्रतम आख्यान श्रवण करनेसे अथवा व्रतपरायण और श्रद्धावान् व्यक्तियोंके सामने पाठ करनेसे, मनुष्य ज्ञानाज्ञानकृत सब पाप दूर करके शुक्लवर्ण-यानयोगसे निश्चय ही शिवपुर गमन करेगा।

तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय।

पतिव्रताका आख्यान।

सूतने कहा,—भगवन्! तब अगस्त्य मुनिसे पूछे जानेपर उन सब देवताओंने सर्व्वलोकहितके लिये क्या कहा,—हे महामुने! यह कहिये। श्रीवेदव्यासने कहा,—देवगणने अगस्त्यवाक्य श्रवणकर बहुमानपुरःसर वृहस्पतिके मुंहकी ओर देखा। वृहस्पतिने कहा,—हे महाभाग अगस्त्य! देवगणके आगमनका कारण श्रवण करो; हे मुनिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम कृतकृत्य हो, तुम महद्गणके भी माननीय हो। प्रत्येक आश्रममें, प्रति पर्व्वतमें और प्रति वनमें तपोधनगण वास करते हैं सही, किन्तु तुम्हारी मर्य्यादा स्वतन्त्र है। तुममें तपःश्री है, तुममें ब्रह्मतेज स्थिरभावसे अवस्थित है, तुममें परमापुण्यश्री है, तुममें औदार्य्य है और यथार्थ मन भी तुममें है। जिनकी बातोंसे लोगोंमें पुण्यसञ्चय होता है, वही तुम्हारी सहधर्म्मिणी यह कल्याणी पतिव्रता लोपामुद्रा तुम्हारी देहच्छाया तुल्या हैं। अरुन्धती, सावित्री, अनुसूया, शाण्डिल्या, सती, लक्ष्मी, शतरूपा, मेनका, सुनीति, संज्ञा और स्वाहा,—पतिव्रताओंमें इन लोपमुद्राकी जितना श्रेष्ठ कहकर वर्णन करती हैं, उतना दूसरी किसीकी नहीं करतीं, यह निश्चय है। हे मुने! तुम्हारे आहार करनेपर यह आहार करती हैं, तुम्हारे बैठनेपर यह बैठती हैं, तुम्हारे सोनेपर यह सोती हैं और तुम्हारे पहले जागती हैं। अलङ्कारविहीना होकर तुम्हें कभी दर्शन नहीं देतीं, कार्य्यवशतः तुम्हारे दूसरी जगह जानेपर सब प्रकारके भूषण परित्याग करती हैं। तुम्हारी आयुर्वृद्धिकी कामनासे कभी तुम्हारा नाम नहीं लेतीं और दूसरे पुरुषका नाम तो कभी ग्रहण नहीं करतीं। तुम्हारे कहने सुननेका यह प्रत्युत्तर नहीं देतीं, तुम्हारे पीड़ा देनेपर भी यह प्रसन्नता परित्याग नहीं करतीं। "यह काम करो" तुम्हारे यह कहते ही, "स्वामिन्! इसे क्रिया हुआ ही समझिये" यह कहती हैं। तुम्हारे आह्वान करनेपर सब गृहकर्म्म त्यागकर शीघ्र आती और कहती हैं,—"नाथ! मुझे काहेको बुलाया,—आदेश करके अनुगृहीता कीजिये।" बहुत क्षण द्वारपर नहीं रहतीं; द्वारके पास शयनादि नहीं करतीं; अनुमति बिना किसीको कुछ नहीं देतीं, तुम्हारे न कहनेपर भी सब पूजोपकरण संग्रह कर रखती हैं,—नियमोदक कुश, पत्र, पुष्प, अक्षतादि, जिस समय जो आवश्यक होता है, उसके अनुसार अवसरकी प्रतीक्षा करती हुई अनुद्विग्न होकर हृष्टचित्तसे वह सब उपस्थित किया करती हैं। यह स्वामीका उच्छिष्ट मिष्ट, अन्न और फलादि सेवन करती हैं, स्वामीदत्त वस्तु महाप्रसाद

समझकर ग्रहण करती हैं; देवता पितृ, अतिथि, परिचारकवर्ग, गो और भिक्षुकको अन्न दिये बिना यह आहार नहीं करतीं। लोपमुद्रा, गृहोपकरण और अलङ्कारवेश सजा और साफकर रखती हैं। यह कर्म्मकुशला और मितव्यया हैं; तुम्हारी अनुज्ञा सिवा यह उपवास व्रतादि नहीं करतीं। सभादर्शन और उत्सवदर्शन यह दूर होसे परिहार करती हैं। तीर्थयात्रा नहीं करतीं, विवाहादि देखने भी नहीं जातीं। जब तुम सुखसे निद्रित वा सुखासीन अथवा इच्छानुसार किसी सन्तोषप्रद कार्य्यमें आसक्त रहते हो, तो अन्तरङ्ग कार्य्यमें भी इच्छानुसार तुम्हें कदापि नहीं उठातीं। रजस्वला होकर तीन दिन स्वामीको (तुम्हें) अपना मुंह नहीं दिखातीं। जबतक स्नान करके शुद्ध नहीं होतीं, तब-तक तुम्हें अपना वाक्य भी नहीं सुनातीं। ऋतुस्नाता होकर स्वामीका (तुम्हारा) ही मुंह देखती हैं, कभी और किसीका मुंह नहीं देखतीं। तुम्हारे स्थानान्तरमें रहनेपर स्वामीका (तुम्हारा) ध्यान करके सूर्य्यदर्शन करती हैं। पति दीर्घायुष्कामा पतिव्रता लोपामुद्रा,—हरिद्रा, कुङ्कुम, सिन्दूर, कज्जल, कांचुली, ताम्बूल, शुभ, माङ्गल्य आभरण, केश-संस्कार, कवरीबन्धन और कर्णादि भूषण वर्ज्जन नहीं करतीं। यह सती,—रजकी, धर्म्मविरुद्ध-तर्ककारिणी, बौद्ध-सन्यासिनी और दुर्भगाके साथ कदापि सखीत्व स्थापन नहीं करतीं। पतिविद्वे-षिणी रमणीसे यह कभी बात नहीं करतीं। एकाकिनी कहीं भी अवस्थान नहीं करतीं और कभी विवस्त्रा होकर स्नान नहीं करतीं। सती लोपामुद्रा—कभी उखल, मूषल, सम्मार्ज्जनी वा जातापर अथवा हातिनापर नहीं बैठतीं। व्यवाय समयके सिवा कभी प्रागल्भता नहीं करतीं। पतिकी जिस जिसमें रुचि है, उन सबको सर्व्वदा चाहती हैं। रमणी पतिवाक्य लङ्घन नहीं करेगी, यही स्त्रियोंका व्रत है, यही परमधर्म्म और यही देवपूजा है। क्लीव, दुरवस्थापन्न, व्याधियुक्त, वृद्ध और सुस्थ वा दुःस्थ—पति कैसा ही क्यों न हो,—स्त्री पतिका लङ्घन एकबारगी ही नहीं करेगी। स्वामीके हृष्ट होनेसे, हर्षमें रहेगी, पतिके विषण्ण वदन होनेसे विषण्णा होगी;—सती नारी, सम्पद्-विपद्में स्वा-मीकी समदुःखसुखभागिनी होगी। घृत, लवण, तैलादि व्यय हो जानेपर भी, पति-व्रता स्त्री पतिको "नहीं" न कहेगी और आयासकर कार्य्यमें पतिको नियुक्त न करेगी। तीर्थ-स्नानाभिलाषिणी नारी पतिपादोदकपान करे। एक-मात्र पति स्त्री जातिके लिये शिव और विष्णुकी अपेक्षा भी ऊंचे हैं। जो स्त्री स्वामीकी अनुमति बिना व्रतोपवास नियम पालन करती है, वह पतिकी आयुः हरण करती है और देहा-

न्तमें नरक जाती है। जो नारी स्वामिकृत भर्त्सनासे रोष-परवश होकर उनका प्रत्यु-त्तर करती है, वह परजन्ममें गांवकी कुतिया और वनकी शृगाली होती है। दृढ़ सङ्कल्पपूर्व्वक पतिपद सेवा करके भोजन करना स्त्रियोंकी उचित है। स्त्रियां कभी उच्चासनपर न बैठें और दूसरेके घर न जावें। लज्जाकर वाक्य कभी न कहें; किसीका अपवाद न करें; कलह दूर हीसे परित्याग करें। गुरुजनके पास ऊंचे स्वरसे बात न करें और हास्य न करें। जो दुर्ब्बुद्धि रमणी भर्त्ताको परित्याग करके पापवृत्ति चरितार्थ करती है, वह पर-जन्ममें तरुकोटरवासिनी क्रूरा उलकी होती है। जो स्त्री स्वामीसे ताड़ित होकर, स्वामीको ताड़ना करनेकी इच्छा करती है, वह परजन्ममें व्याघ्री वा मा-र्जारी होती है, जो स्त्री परपुरुषको कटाक्ष करती है, जन्मान्तरमें वह केकराची होती है। जो स्त्री स्वामीको लङ्घन करके आप ही मिष्टभोजन करती है, वह जन्मान्तरमें ग्राम्य-शूकरी अथवा आत्म-विष्ठाभोजी वाल्गु पक्षी होती है। जो स्त्री पतिसे तू तुकार करती है, वह जन्म-न्तरमें बोबा होती है। जो स्त्री सपत्नीके प्रति सर्व्वदा ईर्षा करती है, वह पुनः पुनः दुर्भागा होती है। जो स्त्री पतिकी दृष्टि-शक्ति आवरण करके परपुरुषको देखती है, वह जन्मान्तरमें कानी, कुमुखी और कुरूपा होती है। जो स्त्री पतिको बाहरसे आते देखकर, प्रीतिके साथ शीघ्र ही जल, आसन, ताम्बूल और व्यजन लाकर, फिर यथासमय खिदनाशक उत्तम उत्तम प्रियवाक्य और पदसेवादि द्वारा पतिकी प्रीति करती है, वह त्रैलोक्य प्रीतिकारिणी होती है। पिता परिमित सुखदाता, भाई परिमित सुखदाता है। पुत्र भी परिमित सुख प्रदान करता है और पति अपरिमित सुखदाता है; नारी उनकी सर्व्वदा पूजा करे। स्त्रियोंका भर्त्ता ही देवता है, भर्त्ता ही गुरु, धर्म्म, तीर्थ और व्रत है; एतएव स्त्रियां सब परित्याग करके एकमात्र पति अर्च्चना ही करें। जैसे देह जीवनहीन होनेसे तत्क्षणात् अशुचि होती है, उसी तरह भर्तृहीना नारी सुस्नाता होनेपर भी सदा ही अशुचि रहती है। सब अमङ्गलोंकी अपेक्षा बिधवा ही अधिक अमङ्गला है। किसी कार्य्यारम्भमें बिधवाके देखनेसे, कहीं भी कभी वह कार्य्य सिद्ध नहीं होता। एक माताके सिवा सभी विधवा अमङ्गला हैं, इसलिये प्राज्ञ व्यक्ति उन सब बिधवाओंके आशीर्व्वाद भी सर्प-तुल्य समझकर परित्याग करें। कन्याके विवाहके समय द्विजगण, यह कहकर आशीर्व्वाद करते हैं, कि पतिके जीवन-मरणमें सहचरी हो। छाया जिस तरह देहकी, ज्योत्स्ना जिस तरह चन्द्रकी और सौदामिनी जिस तरह चन्द्रकी अनुगामिनी

है ; रमणी उसी तरह सर्व्वदा पतिकी अनुगामिनी हों। जो नारी सहमरणो-द्देशसे गृहसे श्मशानतक सहर्ष स्वामीका अनुगमन करती है, निःसन्देह, उसे पद पदपर अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है। जैसे आहितुण्डिक सर्पको बलपूर्व्वक गर्त्तसे उठाता है, सती भी उसी तरह पतिको यमदूतोंके हाथसे मोचन करके स्वर्ग ले जाती है। यमदूतगण सतीका दर्शन करते हो, सतीपतिके दुष्कर्म्मकारी होनेपर भी उसे परित्यागपूर्व्वक दूर भागते हैं। यमदूत कहते हैं,—"हम यमदूत ; पतिव्रताको आती देखकर जिस तरह डरते हैं, वह्नि वा विद्युतसे भी हम उस तरह नहीं डरते।" पतिव्रताका तेज देखकर तपन भी अतिमात्र तापित नहीं होता, दहन भी दग्ध होता है और सब तेजः-पदार्थ कम्पित होते हैं। मानवशरीरमें जितने लोम हैं, उतने अयुत कोटि वर्षतक पतिव्रता पतिके साथ आमोद करती हुई स्वर्गसुख भोग करती है। जिनके घरमें पतिव्रता कन्या वर्त्तमान है, वह जनक-जननी धन्य हैं ; और जिनके घरमें पति-व्रता स्त्री हैं, वह श्रीमान् पति भी धन्य हैं। पितृवंशीय, मातृवंशीय और पति-वंशीय तीन तीन पुरुष पतिव्रताके पुण्यसे स्वर्गसुख भोग करते हैं। दुश्चारिणी स्त्री अपने चरित्रदोषसे पितृकुल, मातृकुल और पतिकुल—इन तीनो कुलोंको पतित करती है और वह स्वयं भी इह-परकालमें दुःख भोग करती है। जिस जिस जगह भूतलपर पतिव्रताके चरण स्पर्श होते हैं, उन सभी स्थानोंकी भूमि मनमें कहती है,—"अब हमें कोई भय नहीं है, अब हम परम पवित्रा हैं।" सूर्य्य चन्द्र वायु भी डर डरकर पतिव्रताको स्पर्श करती है। पतिव्रताको स्पर्शकर जल मनमें कहता है,—"आज हमारा जाड्य दूर हुआ ;—आजसे दूसरेको पवित्र करनेमें मैं समर्थ हुआ।" रूपलावण्य-गर्व्विता रमणी घर घरमें हैं ; किन्तु पतिव्रता स्त्री लाभ केवल विश्वे-श्वरकी भक्ति हीसे होता है ; भार्य्या गृहस्थका मूल है, भार्य्या सुखका मूल है और भार्य्या ही वंशवृद्धिका मूल है। भार्य्याकी सहायतासे इहलोक और पर-लोक जय किया जा सकता है, भार्य्याहीन व्यक्ति दैवकार्य्य, पितृकार्य्य और अतिथि-सत्कारका भी अधिकारी नहीं है। जिसके घरमें पतिव्रता रमणी वर्त्तमान है, वही व्यक्ति यथार्थ गृहस्थ है ; अपतिव्रता रमणी राक्षसी जराकी तरह क्षण क्षणमें पतिको जीर्ण करती है। गङ्गास्नानसे शरीर जिस तरह पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्रीकी शुभ दृष्टिसे शरीर उसी तरह पवित्र हुआ करता है। यदि दैवात् स्त्री किसी प्रकार स्वामीकी सहमृता न हो सके, तो उसे विशुद्ध भावसे चरित्ररक्षा करना उचित है। कारण, चरित्रनाशसे अधोगामिनी

होना पड़ता है और उसके अकार्थके लिये उसका पति, उसका पिता, माता और भ्रातृवर्ग स्वर्गमें रहनेपर भी च्युत होते हैं, इसमें अन्यथा नहीं है। जो स्त्री स्वामीकी मृत्यु पर वैधव्यव्रत पालन करती है, वह परलोकमें फिर स्वामीको पाकर स्वर्ग भोग करती है। विधवाका कवरीबन्धन, पतिके बन्धनका कारण है; इसलिये विधवा सर्व्वदा मस्तक मुण्डन कर रखेगी। विधवा दिन रातमें एकाहार कर सकेगी; दो बार आहार कभी न करे। विधवा त्रिरात्रोपवास पञ्चरात्रोपवास, पक्ष-व्रत, मासोपवास-व्रत, चान्द्रायण, प्राजापत्य, पराक व्रत अथवा तप्तकृच्छ्र-व्रत करे। प्राण जबतक आपसे न जांय, तबतक यवान्न, फलभोजन, शाकाहार वा दुग्धमात्र पान करके, जीवनयात्रा निर्व्वाह करे। विधवा-नारीके पर्य्यङ्कपर सोनेसे; पतिका अधः-पतन होता है, इसलिये पतिके सुखाभि-लाषसे विधवा भूमिपर सोवे। विधवा स्त्री कभी अङ्गमें उबटन न लगावे और गन्धद्रव्य भी व्यवहार न करे। नित्य पति, उनके पिता और उनके पिताके नाम गोत्रादि उच्चारण-पूर्व्वक कुशतिलोदक द्वारा तर्पण करे। विधवा पतिबोधसे विष्णुकी पूजा करे—दूसरे बोधसे नहीं। विष्णुरूपी हरिको सतत पतिरूपसे ध्यान करे। जगतमें जो जो द्रव्य विधवाके अत्यन्त प्रिय हों और जो जो पतिके प्रिय थे, वही वही द्रव्य, प्रीतिकामनासे गुणशाली ब्राह्मणको दान करे। वैशाख, कार्त्तिक और माघ माससें, विशेष नियम अवलम्बन करे और स्नान, दान, तीर्थयात्रा और बारंबार विष्णुका नाम उच्चारण करे। वैशाख मासमें जलकुम्भ दान, कार्त्तिक मासमें देवा-लयमें घृत-प्रदीप दान और माघ महीनेमें धान्य और तिल उत्सर्ग करनेसे स्वर्ग लाभ हुआ करता है। विधवा, वैशाख महीनेमें जलच्छत्र और देवतापर झारा दे और पादुका, व्यजन छत्र, सूक्ष्मवस्त्र, चन्दन, कर्पूरपूर्ण ताम्बूल, पुष्प, अनेक प्रकारके जलपात्र, पुष्पपात्र, विविध पानीय द्रव्य और द्राक्षा रम्भ-फल—"मेरे पति प्रीति लाभ करें" इस कामनासे गुणशाली ब्राह्मण-समूहको दान करे। कार्त्तिक महीनेमें यवान्न अथवा एकविध अन्न आहार करे। वृन्ताक और शूकशिम्बी भोजन न करे। कार्त्तिक मासमें तैल वर्ज्जनकरे, कार्त्तिक मासमें मधु परित्याग करे; कार्त्तिक मासमें कांस्यपात्र व्यवहार न करे, कार्त्तिक मासमें अचार न खावे। कार्त्तिक मासमें मौनव्रत अवल-म्बनकर रहनेसे, अन्तमें उत्तमरूपसे घण्टा दान करे; पत्ते पर भोजन नियम कर ले, अन्तमें घृतपूर्ण कांस्यपात्र दान करे। भूमिशय्या-व्रत करनेसे, समाप्तिके समय सुकोमल सतूलिका शय्यादान करे। फल त्याग करनेसे फल दान करे और रस परित्याग करनेसे,—अन्तमें परित्यक्त रस

दान करे। धान्य परित्याग करनेसे परित्यक्त धान्य अथवा शालिधान्य दे और प्रयत्नके साथ सुवर्ण सालङ्कारा धेनु दान करे। एक ओर सर्व्वविधदान और एक ओर प्रदीप दान। अन्य सर्व्वविध दान कार्त्तिक मासमें प्रदीप दानके षोड़शांशके एकांशके योग्य भी नहीं है। सूर्य्य किञ्चित उदय होनेतक माघ मासमें स्नान करना विधेय है और माघस्नायी व्यक्ति यथाशक्ति नियम अवलम्बन करे। ब्राह्मण यती और तपस्वीगणको पक्वान्न, लड्डू, फेनिका और वटका इण्डरिका, प्रभृति घृतपक्व, मरिच-मिश्रित शुचि कर्पूरवासित शर्करापूर्ण, लोचन लोभनीय सुगन्धिद्रव्य भोजन करावे। शीत-निवारणके लिये शुष्क काष्ठ, रूईभरा वस्त्र और उत्तम आवरण, मञ्जिष्ठा-रक्त वस्त्र, वालापोश, जातीफल, लवङ्गपूर्ण बहुतर ताम्बूल, विचित्र कम्बल, निर्व्वात गृह, कोमला पादुका और सुगन्धि उद्वर्त्तन दान करे। महास्नान-आचरण पुरःसर वारिकाश्रम प्रसिद्ध सूत-कम्बल पूजा, कृष्णागुरु प्रभृति द्वारा देवालयमें धूपदान, स्थूल वर्त्तिका दीपदान और नैवेद्यदान करके 'पति रूपी भगवान प्रीत हों' यह कहे। इसी तरह विविध नियम और व्रतका अनुष्ठान करती हुई विधवा वैशाख; कार्त्तिक और माघ मास बितावे। प्राण कण्ठगत होनेपर भी वृषारोहण न करे, कञ्चुक वा रङ्गीन वस्त्र परिधान न करे। भर्त्तृतत्परा विधवा पुत्रगणसे बिना पूछे कोई कार्य्य न करे। ऐसी आचारवती विधवा भी मङ्गल-रूपिणी हैं। इस प्रकार धर्म्मानुष्ठान-परायण पतिव्रता विधवा भी कभी दुःखभागिनी नहीं होतीं और अन्तमें पतिलोक लाभ करती हैं। गङ्गा और पतिव्रता नारीमें कोई भेद नहीं है। पतिव्रता, साक्षात् हरगौरी तुल्या हैं; अतएव पण्डित व्यक्ति सर्व्वदा उनकी पूजा करें। वृहस्पतिने फिर कहा, हे पतिपद कमल-निहित-नयने! महामातः लोपामुद्रे! यह जो तुम्हारा दर्शन मिला, इससे हमें गङ्गास्नानका फल मिला। इस प्रकार पतिव्रता राजपुत्री लोपामुद्राकी स्तव प्रणाम करके सर्व्वार्थ-विशारद वृहस्पति, प्रणामपूर्व्वक अगस्त्य मुनिसे कहने लगे;—तुम प्रणव और यह लोपामुद्रा श्रुति हैं; यह क्षमा और तुम स्वयं तपःस्वरूप हो; यह सत्क्रिया और तुम उसके फल हो; इसलिये हे महामुने! तुम्हीं धन्य हो; यह साक्षात् पातिव्रत्य तेज, तुम भी साक्षात् ब्रह्मतेज हो, तिसपर यह तपस्यातेज; ऐसा क्या है, जो तुम्हारा अनायास-साध्य नहीं है? तुम्हारा अविदित कुछ भी नहीं है, फिर भी, मैं कहता हूं,—हे मुने! यह देवगण जिस अभिप्रायसे यहां आये हैं, उसे सुनो। यह शतक्रतुर अनुष्ठाता, वृत्रघाती, श्रीमान् इन्द्र हैं, वज्र इनका अस्त्र है, अष्ट सिद्धि

इनके द्वारपर अवस्थान करती हुई, इन्हींके दृष्टिपात प्रसादकी प्रतीक्षा किया करती हैं; इन्हींकी नगर परिधिके भीतर कामधेनुगण विचरण किया करती हैं, इन्हींके पौरगण नित्य कल्पवृक्षकी छायामें शयन किया करते हैं; इनके नगरके राजपथमें प्रसिद्ध चिन्तामणिसमूह ही कङ्कड़ हैं। यह जगद्‌योनि अग्नि हैं और यह धर्म्मराज! यह निऋति, यह वरुण, यह वायु और यह कुवेर और रुद्रादि देवगण हैं;—सर्व्व अभीष्ट सिद्धिके लिये लोग स्तवादि द्वारा इन प्रभुगणकी आराधना किया करते हैं। यही सब आज जगतके लिये तुम्हारे निकट प्रार्थयिता हैं; विश्वेश्वर वह उपकार, तुम्हारी बात मात्रसे साध्य है। विन्ध्य नामे किसी पर्व्वतने, सुमेरुके साथ स्पर्द्धा करके, सूर्य्यका पथ रोध कर दिया है, तुम उसकी वृद्धि निवारण करो। जो स्वभावतः कठिन हैं, जो मार्गावरोधक हैं और जो स्पर्द्धाके साथ वृद्धिप्राप्त होते हैं, उनकी अति वृद्धि अशुभ है। महामुनि अगस्त्यने वृहस्पतिकी यह बात सुनकर विचार न करके ही क्षणकाल समाधि अवलम्बनपूर्व्वक प्रत्युत्तर दिया,—"तथास्तु—आप लोगोंका कार्य्य मैं साधन करूंगा।" यह कहकर अगस्त्य मुनि देवगणको विदा करके चिन्ताके साथ ध्यानस्थ हुए। वेदव्यासने कहा,—कि यह पतिव्रता अध्याय स्त्री वा पुरुष यदि श्रवण करेंगे, तो पाप-कञ्चुक निर्म्मुक्त होकर, अन्तमें इन्द्रलोक जावेंगे।

चतुर्थ अध्याय समाप्त॥ ४॥

पञ्चम अध्याय।

अगस्त्य-यात्रा।

वेदव्यासने कहा, हे सूत! इसके उपरान्त मुनिवर अगस्त्य ध्यानयोगसे विश्वनाथको अवलोकन करके, प्रसिद्ध पवित्रा लोपामुद्रासे यह बात कहने लगी,—अयि वरारोहे! देखो, यह क्या उपस्थित हुआ? यह कार्य्य कहां और मुनिमार्गानुसारी मैं कहां! जिन पर्व्वतभेत्ता इन्द्रने, अवज्ञाके लिये पूर्व्वकालमें सब पर्व्वतोंका पक्षच्छेदन किया है, आज एक सामान्य विन्ध्यगिरिको दमन करनेमें उनका सामर्थ्य कुण्ठित कैसे हुआ? कल्पवृक्ष जिनके प्राङ्गणमें है, वज्र जिनका अस्त्र है, अणिमादि अष्ट प्रकार सिद्धि जिनके द्वारपर हैं, वही इन्द्र, सिद्धिके लिये ब्राह्मणसे प्रार्थी हुए। अहो! दावानल-योगसे जो पर्व्वतसमूह सदा व्याकुल रहता है, उसी पर्व्वतके वृद्धिस्तम्भनका सामर्थ्य हुताशनको भी नहीं रहा? यह जो प्रभु दण्डधर हैं; सर्व्वभूतोंके नियन्ता, यह क्या इस एक पत्थरको दण्ड देनेमें असमर्थ हैं? आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, तुषितगण, मरुद्गण; विश्वदेवगण, अश्विनीकुमारद्वय और

अन्यान्य देवगण—जिनके दृक्पात मात्रसे त्रिलोकनिपात होता है—हे कान्ते ! वह पर्व्वतवृद्धिनिवारणमें क्या असमर्थ हुए ? ओह ! कारण समझ गया ! काशीको उद्देश करके, तत्त्वदर्शी मुनिगणने जो कुछ कहा है, वह सुभाषित मुझे स्मरण हुआ । "मुमुक्षुगण कभी काशी परित्याग न करें ; किन्तु साधारणके काशीवासमें अनेक विघ्न होते हैं" यही मुनियोंका वाक्य है । हे शुभे ! हमारे काशीवास होमें यह महान् अन्तराय उपस्थित है ; मैं इसका अन्यथा कर भी नहीं सकता, कारण स्वयं विश्वेश्वर ही विमुख हुए हैं । ब्राह्मणगणके आशीर्व्वादसे काशीवास होता है ; यदि मुक्तिलाभकी इच्छा हो, तो यह काशी क्या कोई परित्याग करनेकी इच्छा करता है ? जो व्यक्ति काशीवास परित्याग करनेका अभिलाषी है और जो व्यक्ति करतलस्थ मनोहर ग्रास परित्याग करके हस्त मात्र लेहन करता है, यह दोनो ही समान मोहान्ध हैं । अहो ! पुण्यराशिस्वरूपा इस वाराणसीको जनगण किस प्रकार परित्याग कर सकते हैं ? जितनी बार डुबकी मारी जाती है, सामान्य अतिसुलभ आलूकमूल भी उतनी बार पाया नहीं जाता,—एकाध बार पाया जाता है । जो काशी महादेवकी प्रिय राजधानी है, उसी दुर्लभ वाराणसीको प्रति बार प्राप्त करना क्या सम्भव है ? सुतरां एक बार त्याग करके फिर वासकी आशा वृथा है । किन्तु जन्मान्तरसञ्चित पुण्यपुञ्जस्वरूपा वाराणसीके तत्त्वसे अवगत होकर और अति कष्टसे उस वाराणसीको प्राप्त करके मोहवशतः दुर्गतिलाभके लिये अन्यत्र जानेकी कौन इच्छा करता है ? परमात्मतत्त्वप्रदर्शिनी काशी ही कहां है, और काशीवासके अनुकूल सर्व्वतोभावसे तुच्छ अन्यविध कार्य्य ही कहां है ! तब पण्डितगण काशी छोड़कर अन्यत्र कहां जावेंगे ? कुष्माण्डु-फल क्या कभी छागमुखमें प्रविष्ट करता है ! नश्वर मानवगण, बहुपुण्यकी प्रकाशक इस काशीपुरीको क्यों परित्याग करें ? मेरे मनमें आता है, कि उनका पुण्य क्षय हुआ है । अन्यत्र वासमें जिनकी प्रवृत्ति नहीं है, वही मानव सम्पूर्ण जन्तुकी सहायभूता सुकृतिराशि काशीमें जानेका यत्न करते हैं,—दूसरे मानो इस विषयमें यत्न नहीं करते ; और जो व्यक्ति यह काशीवास परित्याग नहीं करेगा, वही संसाररोगसे मुक्तिलाभ करेगा,—दूसरा नहीं । पापविनाशिनी, देवगणकी दुर्लभा, सतत-गङ्गा-सङ्गता, संसार पाशच्छेदनी, शिव-शिवाकी अपरित्यक्ता, त्रिभुवनातीता, मोक्षजननी काशीपुरीको भक्त पुरुषगण परित्याग नहीं करते । अहो जनगण ! तुम लोग निश्चय ही कलुषराशिव्याप्त होकर वञ्चित होते हो ! प्रचुर-पुण्य-धनलभ्या इस काशीमें बड़े आयाससे आकर भी फिर

कहां जानेपर उद्यत हुए हो! ओह! जनगणकी क्या ही मूर्खता है! वही लोग न मनोरम गङ्गाजलसे कमनीय और प्रलय-कालमें भी स्मरारिके त्रिशूलाग्रमें धृत, इस काशीको परित्याग करते हुए अन्यत्र गमनका अभिलाष किया करते हैं। अरे रे लोकसकल! मुक्ति विरोधि-कलुषनाशिनी काशीपुरीस्वरूपा तरणी परित्याग करके शोकपूर्ण पापमय भवसागरमें किसलिये पतित हुए हो? वेदोक्त कर्म्माचरण अथवा योगावलम्बन वा दान वा उग्रतपस्या द्वारा भी काशीपुरी लाभ नहीं होती। ब्राह्मण-गणके आशीर्वाद अथवा विश्वनाथके प्रसाद होसे काशी सुलभा है। किसी स्था-नमें बहुधनव्ययसे धर्म्म लाभ होता है; और एक स्थानमें बहुत दानभोगसे अर्थकाम लाभ होता है; अन्य किसी स्थानमें यह सभी पाये जाते हैं; किन्तु वह जो एक मोक्ष है, वह काशीमें जैसा है, अन्यत्र वैसा नहीं है। श्रुति, स्मृति और प्रसिद्ध पुराण समूहके अनुशासन अनुसार अविमुक्त-क्षेत्रकी तरह पवित्र स्थान और नहीं है। इसलिये अविमुक्तके शरणापन्न होना ही सतत कर्त्तव्य है। प्रसिद्ध मुनि जावालिने कहा है,—"आरुणे! असि नदी ईड़ा नाड़ी और वरुणा नदी पिङ्गला नाड़ीके नामसे कथित है; इन दो नाड़ियोंके बीचमें वह अविमुक्त-क्षेत्र काशी है। काशी ही सुषुम्ना नाड़ी है। यह नाडीत्रियात्मिका वाराणसी यही है। इस वाराणसीमें सर्व्वजीवके प्राणत्याग कालमें विश्वेश्वर शङ्कर, कानमें तारकब्रह्म उपदेश करते हैं; उसीसे जीव-गण ब्रह्मस्वरूप होते हैं।" यह एक श्लोक है, देवादिगण होने कहा है,—इस काशी क्षेत्रमें भगवान् महादेव अन्तकालमें तारकब्रह्म उपदेश देकर अविमुक्त क्षेत्रस्थित जनगणकी मुक्ति सम्पादन करते हैं; इस विषयमें संशय नहीं। अविमुक्तके समान क्षेत्र नहीं है, यह सत्य है, कि अवि-मुक्तके तुल्य और शिवलिङ्ग भी नहीं है यह सत्य—सत्य; बार बार कहता हूं, कि सत्य, सत्य, सत्य है। अविमुक्त-क्षेत्र परि-त्याग करके अन्यत्र अवस्थानमें रत होना और हाथकी मुक्ति ठेलकर अन्य प्रकारकी सिद्धिके लिये अन्वेषण करना—दोनो समान है। महात्मा मुनीशप्रधान अगस्त्य ऋषिने इस प्रकार श्रुति और पुराण द्वारा, विश्वनाथके तुल्य शिवलिङ्ग और काशी सदृशी पुरी और त्रैलोक्यमें नहीं है, यह स्थिर निश्चय करके, कालभैरवके पास जाकर प्रणामपूर्व्वक विज्ञापन किया, कि हे कालराज! आप श्री काशीपुरीके प्रभु हैं, इसीलिये आपसे पूछने यहां मैं आया हूं। हाय, कालराज! मैंने प्रति चतुर्द्दशी, प्रति, अष्टमी, प्रति मङ्गलवार और प्रति रविवा-रको फल-मूल-पुष्प द्वारा आपकी आरा-धना की है। मैं आपके निकट निरपराध हूं, फिर भी आपने मुझे क्यों अपराधी

स्थिर किया? हाय! हाय! हे कालभैरव! आप उत्कट पाप-मोचिनी विकट-मूर्त्ति परिग्रह करके, अपना हाथ प्रसारण-पूर्व्वक "तुम भीत न होना" यह बातें उच्चारण करते हुए काशीवासी भयार्त्त जीवगणकी रक्षा क्या नहीं करते? इसके उपरान्त दण्डपाणिके पास जाकर विलाप करने लगी, कि हे यक्षराज! हे शशाङ्क-सुन्दर-देह! हे श्रीपूर्ण भद्र-नन्दन! हे नायक! हे काशीनिवासि-रक्षक! हे दण्ड-पाणे! आप तो तपःक्लेश सभीसे अवगत हैं; फिर काशीसे मुझे क्यों वहिष्कृत करते हैं? हे देव! काशीवासी जनगणके अन्न-दाता आप हैं, प्राणदाता आप हैं, ज्ञान-दाता भी आप हैं, मोक्षदाता भी आप हैं और आप ही भुजगेन्द्रहार और जटाकलाप द्वारा इनकी पार्थिव देह त्यागोपयुक्त भूषण बना देते हैं। हे देव! सम्भ्रम और उद्भ्रम नामक आपके दो गण हैं, अवस्थ जन-गणके वृत्तान्त-विचारमें पण्डित हैं, वही मोह उत्पादनपूर्व्वक असाधुगणको क्षणकालमें इस मुक्तिक्षेत्रसे बाहर कर देते हैं। इसके उपरान्त अगस्त्य ढुंढि गणेशके पास विलाप करने लगे, प्रभो! ढुंढि विनायक! मेरा वाक्य श्रवण कीजिये, मैं अनाथकी तरह विलाप करता हूं। समस्त विघ्न ही आपके शासनाधीन हैं; दुर्व्वृत्त-गण ही विघ्नपरिभूत होते हैं, मैं क्या इस काशीधाममें दुर्व्वृत्तगण होकी तरह अव-स्थित हूं? चिन्तामणि विनायक, कपर्द्दी-विनायक, आशागजनामक विनायकद्वय और सिद्धिविनायक; यह पञ्चविनायक भी मेरी बात सुनें;—मैं परनिन्दा नहीं करता, परापकार नहीं करता, परस्वमें या परदारमें मेरी मति नहीं है; तब अब मुझपर यह विपाक क्यों उपस्थित हुआ? मैंने त्रिसन्ध्य गङ्गास्नान किया है, सर्व्वदा श्रीविश्वनाथ दर्शन भी किया है और प्रति पर्व्वपर सर्व्व प्रकारकी यात्रा भी की है। तब मुझपर यह विघ्नहेतु विपाक क्यों उपस्थित हुआ? हे मातः विशालाक्षि! हे भवानि! हे मङ्गले! हे सर्व्वसौभाग्य-विधाननिपुणे, ज्येष्ठे! हे असि! हे विश्वे! हे विधे! हे विश्वभुजे। हे श्री-चित्रघण्टे। हे विकटे! हे दुर्गे! और अन्यान्य देवतागण! आप सबको नमस्कार। यह काशीके देवतागण साक्षी हैं; वह श्रवण करें;—मैं स्वार्थवश होकर कभी काशीसे चला नहीं जाता हूं; मैं देवता-गण कर्त्तृक प्रार्थित हुआ हूं, इसलिये क्या करूं? काशी परित्यागके सिवा उनकी प्रार्थना पूर्ण न होगी। इसीलिये काशी परित्याग करना पड़ा। परो-पकारके लिये क्या नहीं किया जाता? पुराकालमें दधीचिमुनिने, दूसरेके लिये निज अस्थि प्रदान की थी; बलि राजाने याचकको त्रैलोक्य प्रदान किया था; मधु-कैटभ नामक असुरद्वयने अपना मस्तक दान

किया था; पक्षिकुल गरुड़ पक्षी भी विष्णुके प्रार्थना क्रमसे उनके वाहन पर्य्यन्त हुए हैं। इसके उपरान्त मुनीश्वर अगस्त्य,—काशी-वासी मुनिगण, बालकवृन्दगण और निखिल तृणवृक्षलतासमूहसे विदा सम्भाषण और काशीपुरीकी प्रदक्षिणा करके वंशसे निकले। निखिल शुभलक्षण-शून्य असत्पथ-विचरणकारी व्यक्ति भी विश्वेश्वर दर्शनकर यात्रा करनेसे अभीष्टसिद्धि लाभ करते हैं। काशीका तृणगुल्म वृक्ष होना ही अच्छा है; कारण, उन्हें अन्यत्र गमन रूप पाप सञ्चित करना नहीं पड़ता। और हम जङ्गमश्रेष्ठ होनेपर भी, हमें धिक् है। कारण, हम काशी परित्याग करके अन्यत्र गमन करते हैं। असि नदीका जल पुनः पुनः स्पर्श करके, अगस्त्य मुनिने, काशी-पुरीकी प्रासादावली चारो ओर देखते हुए अपने नेत्रद्वयसे कहा—हे नयनयुगल! तुम इस काशीपुरीको अच्छी तरह देख लो। हाय! इसके उपरान्त तुम कहां और यह पुरी कहां। हमें यह सुकृतिकराशि काशी परित्याग करके अन्यत्र जाते देखकर काशीके सीमान्तवर्त्ती भूतगण परस्पर हाथ पकड़ पकड़कर और करताली देते देते स्वच्छन्दसे हास्य करते हैं। आहा! पत्नी-सह, अगस्त्यमुनि इस तरह क्रौञ्चयुगलकी तरह बहुबार विलाप करते "हा काशी! कहां हो, दिखाई दो" विरहीकी तरह यह बातें कहते हुए महती मूर्च्छा प्राप्त हुए। अगस्त्यने क्षण-काल मूर्च्छापन्न रहकर मूर्च्छाभङ्गके बाद "शिव शिव, शिव" करके कहा,—प्रिये! आओ चलें; देवगण सब्बसे अति कठिन हैं; प्रिये! त्रिभुवनके सुख-दाता मदनको त्र्यम्बकके पास भेजकर उन्होंने जो काम किया था, वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं है? मुनि अगस्त्य खेदके साथ स्वेदजलकणा-चित-ललाट-परिशो-भित होकर तीन चार पद जैसे ही गये, वैसे ही पृथिवी "इन मुनिवरके प्रत्युद्गमन न करनेसे मैं विनष्ट होजाऊंगी" इस प्रकार भयाधिक्यसे मानो सङ्कुचित हो गई। मुनिने मानो तपोयान आरोहण किया है,—उन्होंने निमेषार्द्ध काल हीमें सामने गगनमार्गरोधी उस समुन्नत विन्ध्यपर्व्वतको देखा। विन्ध्यपर्व्वत,—उस वातापि और इल्वल नामक असुरद्वयके वैरी, सभार्य्य अगस्त्यमुनिको सम्मुखवर्त्ती देखकर ही सत्वर कम्पित हुए। तपस्या, क्रोध और काशी-विरह—त्रिकारणोत्पन्न त्रिविध अग्नि द्वारा जाज्वल्यमान और प्रलयाग्निकेसे तीव्र अगस्त्य मुनिको सामने देखकर विन्ध्यगि-रिने मानो पृथिवी-प्रवेशके अभिलाषी होकर ही, नितान्त खर्व्व होकर कहा,—मैं दास हूं मुझे आज्ञा देकर अनुगृहीत कीजिये। अगस्त्यने कहा,—हे प्राज्ञ विन्ध्य! तुम साधु हो और तुम यथार्थ रूपसे मुझसे अवगत हो; जबतक मैं न लौटूं, तबतक

तुम इसी छोटे स्वरूपमें रहो। तपोनिधि अगस्त्य मुनिने यह बात कहकर उस साध्वीके साथ निज चरण विन्यास द्वारा दक्षिण दिक्को सनाथा किया। उन मुनि-श्रेष्ठके जानेके उपरान्त विन्ध्यगिरिने कम्पित-कलेवरसे उत्कण्ठितकी तरह कहा,—ऋषि आज यदि चले गये हैं, तो अच्छा ही हुआ। क्रमसे निश्चय हुआ, कि ऋषि चले गये हैं; तब विन्ध्यगिरिने सोचा,—"आज मेरा फिर जन्म हुआ, मेरे सदृश धन्य दूसरा नहीं है, इसीलिये मैं अगस्त्यसे अभि-शाप-ग्रस्त नहीं हुआ।" उसी समय कालज्ञ सूर्य्यसारथि अरुणने भी रथ हांका, पहलेकी तरह सूर्य्यकिरण-सञ्चा-रसे जगत्ने अतीव स्वास्थ्य लाभ किया। "मुनि आज कल या परसों आवेंगे" ऐसे ही चिन्ताभारसे आक्रान्त होकर मानो विन्ध्यगिरि स्थिर भावसे रहा। आजतक मुनि भी प्रतिनिवृत्त नहीं हुए, आजतक पर्व्वतकी भी वृद्धि नहीं हुई। खलजन-गणके मनोरथ-तरुका जो कुछ होता है, यहां भी वही हुआ। नीच व्यक्ति, दूस-रेके प्रति असूयाक्रमसे यदि वृद्धिलाभके अभिलाषी हों, तो उनके वृद्धिलाभकी बात तो दूर रहे, उनकी पहलेकी वृद्धि रहनेके सम्बन्धमें भी संशय होता है। खलगणकी इष्टसिद्धि नहीं होती; यदि होती भी है, तो शीघ्र विनष्ट हो जाती है। विश्वे-श्वर-रक्षित विश्वका मङ्गल होता है। बाल-विधवागणके स्तन उत्थित होकर भी, फिर जैसे हृदय हीमें विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार खलगणका मनोरथ भी उनके हृदय हीमें उठकर, फिर हृदय हीमें विलीन हो जाता है। कुत्सित नदी, जैसे अल्पवृष्टि हीमें किनारोंको तोड़ देती है; खलगणकी समृद्धि भी उसी तरह अल्पका-लमें अपनी निज कुल-विनाशिनी होती है। जो व्यक्ति दूसरेकी क्षमता न जानकर ही आत्मशक्ति प्रकाश किया करता है, उन्हींकी तरह यह विन्ध्यगिरि भी केवल उपहासा-स्पद हुआ। व्यासने कहा,—अगस्त्य मुनि रमणीय गोदावरी तटपर विचरण करते रहकर भी काशी-विरह-सम्भूत सन्ताप दूर कर न सके। अगस्त्य मुनि उत्तरदिक्से आते हुए पवनको भी बाहु-प्रसारणपूर्व्वक आलिङ्गन करके, काशीका मङ्गल पूछते। अगस्त्य कभी कहते, लोप-मुद्रे! काशीका वह रचना-पारिपाट्य जगतमें और कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। होगा ही कैसे? काशी तो जगत्स्रष्टा विधाताकी सृष्ट नहीं है। अगस्त्य मुनि काशी विरहमें किसी स्थलमें अवस्थिति, किसी स्थलमें आप ही आप वाक्यप्रयोग, किसी स्थलमें पतन, किसी स्थलमें उपवेशन करते हुए इधर उधर भ्रमण करने लगे। इसके उपरान्त भाग्यवान् जिस तरह सुस-मृद्धि दर्शन करते हैं, उसी तरह पुण्यराशि तपोधन अगस्त्यने भ्रमण करते करते उच्च-

लित-भत प्रभाङ्गकान्तिकमनीया महाल-च्मीका आगे दर्शन किया। महालक्ष्मी अपने तेजद्वारा दिवा भाग ही में सूर्य्यको पराजय करके प्रकाश पा रही थीं। उन्होंने अगस्त्यका मनस्ताप समूह मानो एकबारगी ही निर्व्वाण कर दिया। अगस्त्य-साचात्कृता महालक्ष्मी, वहां चिर-स्थायिनी थीं। रातको पद्म सङ्कुचित होता है, अमावस्या तिथि आनेसे चन्द्र भी कहीं जाते हैं, चीरोदसमुद्रमें मन्दर-मन्थनका भय है,—इन्हीं सब कारणसे महालक्ष्मी पद्म, चन्द्र और चीरोद परि-त्याग करके मानो वहां वास करती हैं। जिस समयसे माधवने मानपूर्व्वक पृथिवीको भार्य्या की है, लक्ष्मी उसी अवधिसे सपत्नीके प्रति ईर्य्याविश मानो इस स्थानमें अधिष्ठान करती हैं। वराहरूपसे त्रैलोक्य-विनाशक महासुरको विनाश करके महालक्ष्मी इस रमणीय कोलापुर नगरमें अवस्थान करती हैं। इसके उपरान्त उन महालक्ष्मीके निकट अति हृष्टान्तःकरणसे उपस्थित होकर मुनिवर अगस्त्य हृष्टचित्तसे इष्टदायिनी महालक्ष्मीको प्रणामपूर्व्वक इष्टवचनावली द्वारा उनका स्तव करने लगे,—हे कम-लातायचि! हे श्रीविष्णुहृदय-कमलवा-सिनि! जगज्जननि! मातः कमले! आपको नमस्कार करता हूं। हे चीरोदसम्भवे! हे सुकोमल-कमल-गर्भ-गौरप्रभे! प्रणत-शरण्ये! लक्ष्मि! आप प्रसन्न हों। हे जननमातः आप विष्णुलोककी श्री हैं; हे चन्द्र-सुन्दरमुखी! आप चन्द्रकी ज्योत्स्ना हैं, सूर्य्यमण्डलमें प्रभा और त्रिजगतमें आप शोभा पाती हैं; हे सदा प्रणत-शरण्ये! लक्ष्मि! आप प्रसन्न हों। हे मातः! आप अनलमें दहनात्मिका शक्ति हैं। आप हीकी साधकतासे विधिने यह विचित्र जगत् सृष्टि की है और विश्वम्भर विष्णु भी आप हीकी सहायतासे यह सम्पूर्ण जगत् पालन करते हैं; हे सदा प्रणत-शरण्ये! लक्ष्मि! आप प्रसन्न हों। हे अमले! आपके इस जगत्के परित्याग करने होसे हर, उसके संहार-साधनमें समर्थ होते हैं। देवि! आप ही सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी हैं। आप ही कार्य्यकारण-स्वरूपा हैं। हे अमले! आप हीको प्राप्त करके विष्णु पूज्य हुए हैं। हे सदा-प्रणत शरण्ये! लक्ष्मि! आप प्रसन्न हों। हे शुभे! आपका करुणा-कटाच जिसपर निपतित होता है, त्रैलोक्यमें वही वीर, वही गुणवान्, वही पण्डित, वही धन्य, कुलशीलकला-कलाप द्वारा वही मान्य, वही व्यक्ति मुख्य, पवित्र और वही व्यक्ति पुरुष है। आप जहां चण काल भी वास करती हैं, पुरुष, गज, अश्व, स्त्रीसमूह, तृण, सरोवर, देवकुल, गृह, अन्न, रत्न, पची, पशु, शय्या वा मृत्तिका,—जो ही कुछ क्यों न हो, वही इस जगतमें श्रीसम्पन्न है,—दूसरे पदार्थ श्रीसम्पन्न नहीं हैं। हे

लक्ष्मि! आपके स्पर्शसे सभी द्रव्य पवित्र होते हैं। आपका जो परित्यक्त है, वही इस जगतमें अपवित्र है। हे श्रीविष्णुपत्नि! कमलालये कमले! जहां आपका नाम होता है, उसी जगह सुमङ्गल होता है। लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा, मा, क्षीरोदजा, अमृत-कुम्भकरा, इन्दिरा और विष्णुप्रिया, यह द्वादश नाम जो सर्व्वदा जप करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता। सभार्य्य अगस्त्यमुनिने, इस प्रकार भगवती हरिप्रिया महालक्ष्मीका स्तव करके दण्डवत् होकर साष्टाङ्गसे उनका प्रणाम किया। लक्ष्मीने कहा, हे मित्रा-वरुणसम्भव अगस्त्य! उठो, उठो, तुम्हारा मङ्गल हो! हे शुभव्रते पतिव्रते! लोप-मुद्रे! तुम भी उठो! मैं इस स्तवसे प्रसन्ना हुई हूं। जो मनका अभीष्ट है, वह मुझसे प्रार्थना करो। हे महाभागे! हे अमले राजनन्दिनि! तुम इस स्थानमें उपवेशन करो! तुम्हारे पातिव्रत्यादिसूचक अङ्गके सुलक्षणसमूह और सुपवित्रव्रतसमूह द्वारा अपने इस असुरास्त्र-तापित शरीरको शीतल करनेकी इच्छा होती है। हरिप्रिया लक्ष्मीने, यह कहकर प्रीतिके साथ मुनि-पत्नीका आलिङ्गन करते हुए कितने ही सौभाग्यप्रद अलङ्कार द्वारा उन्हें अलङ्कृत किया। लक्ष्मीने अगस्त्यको फिर कहा,— हे मुनि! तुम्हारे मनस्तापका कारण मैं जानता हूं! काशी-विरह-सम्भूत अनल सचेतन मात्रको ही दग्ध किया करता है। पुराकालमें जब वह देव देव विश्वेश्वर मन्दरपर्व्वतपर गये थे, तब काशी-विरहसे उनकी भी यही दशा हुई थी। शूलपाणिने फिर उस काशीका वृत्तान्त जाननेके लिये क्रमसे ब्रह्मा, केशव, प्रमथगण, गणेश और अन्यान्य देवगणको मन्दर-पर्व्वतसे प्रेरण किया था। वह, ब्रह्मादि देवगण सभी पुनः पुनः काशीधामकी गुणावली विचारकर तबसे अबतक और कहीं जा नहीं सके। उनकीसी पुरी और कहां है? महालक्ष्मीकी यह बात सुनकर महा-भाग अगस्त्यने उन्हें प्रणामपूर्व्वक भक्ति-पूर्ण यह बात कही,—मातः! यदि मैं वरयोग्य हुआ हूं और यदि आपकी मुझे वरदानकी इच्छा हो, तो मुझे यह वर दीजिये, कि मुझे पुनर्व्वार वाराणसी-प्राप्ति हो। जो लोग मेरा किया यह आपका स्तोत्र भक्तिके साथ पाठ करेंगे, उन्हें कभी सन्ताप, दरिद्रता, इष्टवियोग या सम्पत्ति क्षय न हो। उन्हें सर्व्वत्र जयलाभ हो और उनका वंशलोप न हो। लक्ष्मीने कहा,— हे मुने! तुमने जो कुछ कहा, वह सभी होगा। यह स्तोत्र पाठ करनेसे मैं सन्निहित होती हूं। जिस गृहमें यह स्तोत्र पढ़ा जाता है, उसमें अलक्ष्मी और कालकर्णी कभी प्रवेश नहीं करती। गज, अश्व और पशुगणके शान्त्यर्थ यह स्तोत्र सर्व्वदा

पाठ करना। यह स्तोत्र भूर्ज्जपत्रपर लिखकर कण्ठदेशमें धारण करानेसे, बाल-ग्रहग्रस्त बालकोंके लिये परम शान्तिकारक होता है। यह मेरा वीजरहस्य यत्नपूर्वक रक्षणीय है। श्रद्धाहीन व्यक्तिको यह स्तोत्र कभी न देना; अशुचि व्यक्तिको भी न देना। हे विप्रेन्द्र! ब्रह्मन्! और भी सुनो; भावी एकोनविंश द्वापरयुगमें, तुम निश्चय ही व्यास होगे। तब वेद-विभाग और पुराण धर्म्मशास्त्र उपदेश करके और काशी प्राप्त होकर अभीष्टसिद्धि लाभ करोगे। इस समय एक हितोपदेश देती हूं, सम्प्रति उसे करो। यहांसे कुछ आगे जाकर प्रभु कार्त्तिकेयको देखोगे। हे ब्रह्मन्! षड़ानन शिवभथषित यथाया काशीरहस्य तुम्हें सुनावेंगे, उससे तुम्हें सन्तोष होगा। अगस्त्य यह वरलाभ करके महालक्ष्मीको प्रणामपूर्व्वक मयूरवाहन कुमारके अधिष्ठान-स्थानकी ओर चले।

पञ्चम अध्याय समाप्त॥ ५॥

षष्ठ अध्याय।

तीर्थ-प्रकरण।

वेदव्यासने कहा,—हे महाभाग सूत! श्रवण-मनोहारिणी कथा श्रवण करो। यह कथा याद रखनेसे संसारमें मनुष्य सर्व्व-पुरुषार्थभागी होता है। सभार्य्य अगस्त्यने महालक्ष्मी दर्शनानन्दरूप अमृतधारामयी नदीमें स्नान करके परम प्रीति लाभ किया। हे अग्निकुण्ड-समुद्भूत निर्म्मल-हृदय सूत! पुरावेत्तृगण कथित एक सत्कथा श्रवण करो। जिन साधुओंके हृदयमें परोपकारप्रवृत्ति बलवती होती है, उनके विपत्समूह नष्ट होते हैं और पद पदपर सम्पद्वृद्धि हुआ करती है। परोपकार द्वारा जो पवित्रता और फल लाभ किया जाता है, वह पवित्रता तीर्थ स्थानमें पाई नहीं जाती, वह फल बहुत दान और उग्र तपस्या द्वारा भी पाया नहीं जाता। परोपकार धर्म्म और दानादि सम्भूत यावतीय धर्म्मको विधाताने एक तुलादण्डमें (विभिन्न पलड़ोंमें) तोला था, उसमें परोपकार धर्म्मका दिक् भारी हुआ। शास्त्रीय वाग्जाल उत्तम रूपसे आलोड़न करके यही निश्चय किया गया है, कि परो-पकारकी अपेक्षा और धर्म्म नहीं और परापकारकी अपेक्षा और पाप नहीं। परोपकार-परायण-अगस्त्यका फल ही इसका निदर्शन है। कहां वैसा काशी-विरहज दुःख और कहां वैसा लक्ष्मीमुख-दर्शन! अगस्त्य परोपकार फल होसे इस विपुल दुःखके बाद असाधारण सुख लाभमें समर्थ हुए थे। जीवन और विविध धन हस्तिकर्णाग्र भागकी तरह चपल है; इसलिये पण्डित व्यक्ति एक परोपकार ही करेंगे। जिन लक्ष्मीके नाम मात्र ग्रहणसे

सामान्य मनुष्य भी जगतमें अतुलनीय हुआ करते हैं, अगस्त्य मुनि, उन्हीं लक्ष्मीकी साक्षात् अवलोकनकर कृतकृत्य हुए, यह कहना ही बाहुल्य है। इसके उपरान्त अगस्त्य मुनिने यथेच्छाक्रमसे जाते जाते दूरसे श्रीशैल देखा। साक्षात् तारकनिसूदन देव कार्त्तिकेय इस श्रीशैल हीमें अवस्थित हैं। तब मुनिने प्रीतमनसे पत्नीसे कहा,—कान्ते! तुम यहीं ठहरकर परम कमनीयतर श्रीमत् श्रीशैलशिखर अवलोकन करो; इनके दर्शनसे मनुष्यका कभी पुनर्जन्म नहीं होता। यह पर्व्वत चतुरशीत योजन विस्तृत है। इन श्रीशैलके सर्व्वाङ्गमें शिवलिङ्ग समझकर इनका प्रदक्षिण करना पड़ता है। लोपामुद्राने कहा,—स्वामिन्! आपकी अनुमति हो, तो कुछ कहनेकी इच्छा करती हूं। स्वामीकी अनुमति पाये बिना जो स्त्री बोलती है, वह पतिता होती है। अगस्त्यने कहा देवि! क्या कहनेकी इच्छा है, वह निःशङ्क चित्तसे कहो। तुम्हारी जैसी स्त्रियोंके वाक्य पतिके लिये खेदकर नहीं होते। इसके उपरान्त देवी लोपामुद्राने, मुनिवरको प्रणाम करके सबके हितके लिये और अपने संशयापनोदनके लिये नम्र भावसे पूछा,—यदि यह सत्य है, कि श्रीशैलशिखर दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, तो काशीवास कामना करनेका प्रयोजन क्या है? अगस्त्यने कहा, हे अनघे! अच्छी बात पूछी; हे वरारोहे! तत्त्वचिन्तक मुनिगणने इस सम्बन्धमें वारंवार जो स्थिर किया है, उसे सुनो। मुक्तिस्थान अनेक हैं, उनके सम्बन्धमें जो कुछ उन्होंने निर्णीत किया है, वह सब सुनाता हूं। इस विषयमें क्षणकाल मनोयोग दो। पहले सुविख्यात तीर्थराज प्रयाग, सब तीर्थोंमें कामनापूरक; प्रयाग, धर्म्म, कामार्थ-मोक्ष-प्रदाता हैं। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्रगङ्गाद्वार, अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, गङ्गा, सरस्वती, सिन्धुसङ्गम स्थल, गङ्गासागरसङ्गम स्थल, काञ्ची, त्र्यम्बकगिरि, सप्तगोदावरीतट, कालञ्जर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महास्थान, अमरकण्टक, श्रीक्षेत्र, गोकर्ण, भृगुकच्छ, भृगुतुङ्ग, पुष्कर श्रीपर्व्वत और धारातीर्थ प्रभृति बाह्य तीर्थ, और सत्य प्रभृति मानस-तीर्थ—प्रिये यह सब तीर्थ मुक्तिप्रद हैं; इस विषयमें सन्देह नहीं है। गया नामक जो तीर्थ शास्त्रमें उक्त हुआ है, वह पितृगणका मुक्तिप्रद है। गयाश्राद्धकारी और उनके पुत्र पितृ-पितामहऋणसे मुक्तिलाभ करते हैं। लोपामुद्राने कहा,—महामते! जिन जिन मानस तीर्थोंकी बातें उक्त हुईं, वह कौन कौन हैं? यह कहनेकी आज्ञा हो। अगस्त्यने कहा,—हे अनघे! मैं सब मानसतीर्थोंकी बात कहता हूं, श्रवण करो। इन सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य परम गति प्राप्त होता है। सत्य, क्षमा, इन्द्रियजय, सर्व्वभूतोंपर

दया, आर्ज्जव, दान, दम, सन्तोष, ब्रह्मचर्य्य, प्रियवादिता, ज्ञान, धैर्य्य और तपस्या—इनमें प्रत्येक एक तीर्थ है। ब्रह्मचर्य्य परम तीर्थ है। परम चित्तशुद्धि ही तीर्थोंका भी तीर्थ है। मात्र जलमें देह डुबा लेनेका नाम स्नान नहीं है;—वाह्येन्द्रिय दमनरूप स्नान जिसने किया है, वही स्नात है; जिसका चित्त निर्म्मल हुआ है, वही पवित्र है। जो व्यक्ति लुब्ध, पिशुन, क्रूर, दाम्भिक और विषयान्ध है, सब तीर्थोंमें सुस्नात होनेपर भी वह व्यक्ति पापी और मलिन है। मात्र शारीरिक मल त्यागकर मनुष्य निर्म्मल नहीं होता। मनका मल दूर कर सकने हीसे सुनिर्म्मल होता है। जलौका जल हीमें बढ़ते और जल हीमें मरते हैं। फिर भी वह सब स्वर्ग नहीं जा सकते; कारण, उनकी चित्तशुद्धि नहीं होती। ऐसा कहा है, कि विषयका अत्यन्त अनुराग ही मानस-मल है, विषयका-वैराग्य ही मनका नैर्म्मल्य है। चित्त भीतरी वस्तु है; वह दुष्ट होनेसे तीर्थ स्नानसे शुद्ध नहीं होता। इसी तरह सुराभाण्डको सौ बार जलसे धोनेपर भी उसकी अशुचि दूर नहीं होती। मनोभाव निर्म्मल न होनेसे दान, याग, तपस्या, शौच, तीर्थसेवा और वेदज्ञान,—यह सभी अतीर्थ हैं। जितेन्द्रिय चाहें जहां रहें, वहीं कुरुक्षेत्र, वहीं उनका नैमिषारण्य, वहीं उनके पुष्करादि तीर्थ हैं। ध्यान-विशोधित, राग-द्वेष-मलापह ज्ञान-जलमय मानस-तीर्थमें जो व्यक्ति स्नान करता है, वह परमागति लाभ करतां है। देवि! तुमसे यह मानसतीर्थका स्वरूप कीर्त्तन किया। अब भौम-तीर्थ-समूहकी पवित्रता सम्बन्धकी कारण सुनो। जैसे शरीरका कोई कोई अंश पवित्रतम है, उसी तरह पृथिवीका भी कोई कोई प्रदेश अत्यन्त पवित्र है। भूमिका अद्भुत प्रभाव, जलका प्रभाव और मुनिगणका परिग्रह, यह सब तीर्थ पवित्रताके कारण हैं। इसलिये जो व्यक्ति नित्य नित्य भौम और मानस दोनो तीर्थोंमें स्नान करता है, वह अत्युत्कृष्ट गति लाभ करता है। जो व्यक्ति अन्ततः त्रिरात्र उपवास-व्रत नहीं करता, तीर्थगमन नहीं करता, अथवा सुवर्ण दान वा गोदान नहीं करता, वह दूसरे जन्ममें दरिद्र होता है। तीर्थ-सेवासे जो फल लाभ होता है, प्रचुर दक्षिणा देकर ज्योतिष्टोमादि यज्ञ करनेसे भी वह फल प्राप्ति नहीं होती। जिसके हाथ पैर और मन सुसंयत हैं, जिसके विद्या, तपस्या और कीर्त्ति है,—उसीका तीर्थफल भोग होता है। प्रतिग्रह-निवृत्त, किसी कारणसे भी सन्तुष्ट, अहङ्कारशून्य व्यक्ति ही तीर्थके फल भोग करते हैं। दम्भहीन, काम्यकर्म्ममें प्रवृत्तिशून्य, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय और निःसङ्ग व्यक्ति ही तीर्थसेवाका फल भोग करते हैं। क्रोधशून्य, निर्म्मलबुद्धि, सत्यवादी, दृढ़व्रत और सर्व्वभूतमें

आत्मसमदर्शी व्यक्ति ही तीर्थसेवाका फल भोग करते हैं। धैर्य्य, श्रद्धा और एकाग्रताके साथ तीर्थ पर्य्यटन करनेसे पापीको भी शुद्धि लाभ होता है; पुण्यवानकी बात क्या कहूं! तीर्थसेवी मानव तिर्य्यक्योनिमें जन्मग्रहण नहीं करते, कुदेशमें उत्पन्न नहीं होते, दुःखी नहीं होते; परन्तु स्वर्गलाभ और मोक्षके उपाय प्राप्त करते हैं। श्रद्धा-हीन, पापात्मा, * नास्तिक, सन्दिग्धचित्त और हेतुवादी—इन पञ्चविधि व्यक्तिको तीर्थफल प्राप्ति नहीं होती। जो सब धीर मनुष्य, शीत-ग्रीष्म, सुख-दुःखादि सर्व्वद्वन्द्व सहिष्णु होकर यथोक्त विधान क्रमसे तीर्थ पर्य्यटन करते हैं, वह स्वर्गभागी होते हैं। तीर्थयात्राभिलाषी व्यक्ति पूर्व्वदिन गृहमें उपवास करके तीर्थगमन निमित्तिक श्राद्ध, गणेशपूजा, विप्रपूजा और साधुपूजा यथा-शक्ति करें। इसके उपरान्त पारण करके हृष्टचित्तसे नियमावलम्बनपुरःसर तीर्थयात्रा करें। फिर तीर्थ-प्रतिनिवृत्त होकर श्राद्ध करनेसे, तीर्थके सम्पूर्ण फलभागी होते हैं। तीर्थमें ब्राह्मणपरीक्षा नहीं है; जो अन्नार्थी हैं, उन्हें भोजन कराओ। तीर्थश्राद्धमें सक्तु वा पायस चरु-निर्म्मित पिण्डदान करो। गुड़ और तिलपिष्ट-निर्म्मित पिण्डदान भी कपिगणका विचारसिद्ध है। तीर्थश्राद्धमें अर्घ्य आवा-हन नहीं है। श्राद्धके प्रशस्त काल होमें हो और अप्रशस्त काल होमें हो, तीर्थ-प्राप्तिमात्र ही श्राद्ध करें, तर्पण भी करें;—विलम्ब-विघ्न न करें! प्रसङ्गतः तीर्थमें उपस्थित होनेसे, तीर्थस्नान करें। उससे तीर्थस्नानका फल प्राप्त होगा, किन्तु तीर्थ यात्राका फल न होगा। मनुष्यके पाप करके तीर्थयात्रा करनेसे पापशान्ति होती है; किन्तु यथोक्त तीर्थफल नहीं होता। दूसरेके लिये (वेतनादि लेकर) जो तीर्थ-गमन करते हैं, उन्हें सोलह भागमें एक भाग फल होता है। जो दूसरे कार्य्यके उद्देशसे यथाविधि तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें आधा फल होता है। कुशमय प्रतिमूर्त्ति बनाकर तीर्थजलमें स्नान कराओ। जिस व्यक्तिको उद्देश करके यह कुशमूर्त्ति स्नान कराई जावेगी, अष्टमांशका एकांश फल उसे होगा। तीर्थमें जाते ही उपवास करो, मस्तक मुण्डन भी कराओ, कारण, शिरःस्थित पापसमूह मस्तकमुण्डनसे अप-गत होते हैं। जिस दिन तीर्थप्राप्ति हो, उससे अगले दिन उपवास करो और तीर्थप्राप्तिके दिन श्राद्ध करो। तीर्थप्रसङ्गमें तुमसे तीर्थयात्राका अङ्ग कार्य्य कहा। यह स्वर्गसाधन और मुक्तिका भी उपयोगी है। पृथिवीमें काशी, काञ्ची, मायापुरी, द्वारका, अयोध्या, मथुरा और अवन्ती,—यह सप्तपुरी मोक्षदान किया करती हैं।

---

* पापी,—जिसने पाप किया है। पापात्मा,—जिसका स्वभाव ही पापमय है। तीर्थमें पापीकी शुद्धि होती है, किन्तु पापात्माकी नहीं।

और समस्त श्रीशैल ही मुक्तिप्रद हैं; केदार उससे अधिक प्रयाग,—और श्रीशैल केदारसे भी उत्कृष्ट और मुक्तिप्रद है। तीर्थराज प्रयागसे भी अविमुक्त-क्षेत्र विशिष्ट है। यह निश्चय है, कि अविमुक्त-क्षेत्रसे जैसी निर्व्वाण प्राप्ति होती है, वैसी और कहीं नहीं होती। दूसरे सब मुक्ति-क्षेत्र ही काशी-प्रापक हैं। काशीप्राप्तिके बाद ही निर्व्वाण-मुक्ति होगी,—अन्य प्रकार वा अन्यान्य कोटि तीर्थसेवासे भी निर्व्वाण-मुक्ति नहीं मिलती। इस विषयमें विष्णु-पारिषद और शिवशर्म्माका कथोपकथना-नुसारी पुराना इतिहास कीर्त्तन करता हूं। मानव, संयमचित्तसे यह तीर्थाध्याय श्रवण करनेसे और ब्राह्मणके, श्रद्धा-भक्ति समन्वित ब्राह्मणगणको, धर्म्मनिरत क्षत्रिय-गणको, सत्पथवर्त्ती वैश्योंको अथवा द्विज-भक्त शूद्रोंको श्रवण करानेसे वह निष्पाप हुआ करते हैं।

षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

सप्तपुरी-वर्णन।

अगस्त्यने कहा, कि मथुरापुरीमें एक उत्तम ब्राह्मण थे, जिनके शिवशर्म्मा नामे विख्यात एक महातेजाः पुत्र थे। वेदाध्ययन, यथार्थतः वेदार्थ-विज्ञान, धर्म्मशास्त्र-पाठ, पुराणाध्ययन, वेदाङ्ग अभ्यास, उत्तमरूपसे तर्कशास्त्र आलोचना, पूर्व्वमीमांसा-उत्तर-मीमांसा-आलोचना, धनुर्व्वेद-तत्त्वज्ञान, आयुर्व्वेद-विचारणा, नाट्यशास्त्रमें परिश्रम, बहुतर अर्थशास्त्र संग्रह, अश्व-गंज चेष्टा-भिज्ञान, चतुःषष्टिकलाभ्यास, मन्त्रशास्त्र-विचक्षणता, नानादेश-भाषामें अभिज्ञता और बहुदेशीय लिपिज्ञता—शिवशर्म्माका यह सब हुआ। इसके उपरान्त धर्म्मतः अर्थ उपार्ज्जन यदृच्छाक्रमसे धनादिभोग, सद्गुणसम्पन्न पुत्रोत्पादन और पुत्रोंको धन विभाग कर देनेके उपरान्त, द्विजोत्तम शिवशर्म्मा यौवनके अस्थिरलक्षणसे और शास्त्र और लोकमें जिसे जरा कहते हैं, उस जराका आप ही उपस्थित होना जानकर अत्यन्त चिन्तायस्त हुए। उन्होंने सोचा, कि अध्ययन करने और धनोपार्ज्जन करने हीमें मेरा समय नष्ट हुआ है,—कर्म्मक्षयकर महेश्वरकी आराधना की नहीं जा सकी। सर्व्वपापहर सर्व्वव्यापी हरिका सन्तोष सम्पादन किया नहीं गया। मानव-गणके सर्व्वाभीष्टदाता गणेशकी भी अर्चना नहीं की गई। मैंने कभी तमःस्तोमविनाशी सूर्य्यदेवकी पूजा नहीं की, सर्व्वबन्धन-विमोचिनी जगज्जननी महामायाका भी ध्यान नहीं किया। समृद्धिदाता देवगणको भी मैं समस्त यज्ञ द्वारा तृप्त कर नहीं सका। पाप शान्तिके लिये तुलसी कानन सेवा भी नहीं कर सका। इह परकालके विपत्तिभञ्जन, ब्राह्मणगणका भी मधुरतर

सम्पन्न मिष्टान्न द्वारा तृप्तिसाधन नहीं किया। इह-परकालमें फलदाता, बहु-पुष्पफल-सम्पन्न, स्निग्ध-पल्लव, सुच्छायायुक्त वृक्षराजि भी पथिपार्श्वमें रोपण कर नहीं सका। मैं इहकाल और परकालमें उत्तम वास प्रदायिनी अपने अपने पितृ-गृहस्थित युवती कन्याओंको, उनके मनोमत वस्त्र, कञ्चुकी और अङ्ग प्रत्यङ्गके अलङ्कार द्वारा अलङ्कृत कर नहीं सका। मैंने यमलोक-निवारिणी उर्व्वराभूमि ब्राह्मणको नहीं दी। परम पापहारी सुवर्ण, वर्णश्रेष्ठको मैं दे नहीं सका। इहजन्ममें पापनाशिनी और परवर्त्ती सप्तजन्मकी सुखदायिनी अलङ्कृता सवत्सा गाय मैंने सत्पात्रको दी नहीं। मैं मातृऋण परिशोधार्थ जलाशय बनवा नहीं सका। मैंने स्वर्गपथ-प्रदर्शक अतिथिका सन्तोष-साधन कभी किया नहीं। यमलोकगमन-परायण व्यक्तिको पथमें स्वर्ग-सुखप्रद छत्र, पादुका, कमण्डलु पथिकको दिया नहीं। इहलोककी सुखप्राप्ति और स्वर्गमें दिव्य-कन्या लाभके लिये, मैंने कभी कन्या-विवाहार्थ धन नहीं दिया। इह-परजन्ममें बहुत मिष्टान्नपान-प्रद वाजपेययज्ञान्त स्नान मैं लोभवश कर नहीं सका। जिस लिङ्ग स्थापनसे निखिल विश्व स्थापनका फल होता है, मैं देवालय निर्म्माण कराकर वह शिवलिङ्ग भी स्थापन कर नहीं सका। सर्व्वसम्पत्तिप्रद, विष्णुमन्दिर निर्म्माण भी कर नहीं सका। सूर्य्य-गणेशादिकी प्रतिमा भी प्रस्तुत नहीं की गई। गौरी वा महालक्ष्मीकी मूर्त्ति चित्रपटमें भी अङ्कित करा नहीं सका। इनकी प्रतिमा निर्म्माण करानेसे कुरूप और दुर्भाग्यशाली नहीं होता। ब्राह्मणोंको दिव्य-वस्त्र-सम्पत्तिका हेतुभूत सूक्ष्म उज्ज्वल-विचित्र वस्त्र भी दान नहीं किया। मैंने सर्व्वपाप क्षयके लिये सुसमिद्ध अनलमें घृताक्त तिल-होम भी नहीं किया। श्रीसूक्त, पावमानी मन्त्र, ब्राह्मण मन्त्र, मण्डल मन्त्र, पुरुषसूक्त और शतरुद्रीय मन्त्र—यह सब पापनाशन वेदमन्त्र भी मैं जप कर नहीं सका; अर्थात् गृही होकर यह सब मन्त्र जप नहीं किये। रविवार और त्रयोदशी त्याग करके अश्वत्थ वृक्षकी सेवा भी कर नहीं सका। अश्वत्थ वृक्षकी सेवा तत्क्षणात् पाप विनाश करती है; किन्तु केवल रविवार त्रयोदशी ही नहीं,—शुक्रवारको और निशाभागमें भी अश्वत्थ सेवा कर्त्तव्य नहीं किया। मैंने सर्व्व-भोगसमृद्धिप्रद, सुकोमल, बहुतूलक, दर्पण-संयुक्त उज्ज्वल शय्या भी उत्सर्ग नहीं की। अज, अश्व, महिषी, मेषी, दासी, कृष्णा-जिन, तिल, दधि, शक्तु, जलपूर्ण घट, आसन, कोमल पादुका, पादाभ्यङ्ग, दीप, विशेष फलजनक जलसत्र, व्यञ्जन, वस्त्र, ताम्बूल और मुख-सौगन्ध सम्पादक अन्यान्य वस्तु,—यह सब द्रव्य दान, नित्यश्राद्धानुष्ठान, भूतवलिदान और अतिथिपूजा अथवा

अन्यान्य प्रशस्त द्रव्यदान जो करते हैं, वही सब पुण्यवान मानव यम, यमदूत दर्शन नहीं करते, यमयातना भोग नहीं करते, यमालयमें भी उन्हें प्रवेश करना नहीं पड़ता। किन्तु मैंने वह सब काम भी नहीं किये। प्राजापत्य, चान्द्रायण, नक्तव्रत प्रभृति शरीरशोधक काम भी मैंने कभी नहीं किये। प्रति दिन गोग्रास नहीं दिया, गो-गात्र कण्डूयन नहीं कर दिया, गोलोक-सुखप्रदायिनी गाभीका भी पङ्कसे उद्धार नहीं किया। प्रार्थित अर्थ प्रदान करके प्रार्थियोंकी कार्य्य सिद्धि नहीं की;—परजन्ममें मैं "देहि देहि" रवकारी याचक होऊंगा। विद्याज्ञान, शास्त्रज्ञान धनसम्पत्ति, पुत्रकलत्र, चित्र-हर्म्य इत्यादि कुछ भी परलोक-यात्रामें हमारा अनुगामी नहीं होगा। शिवशर्म्माने ऐसी चिन्ता करके, समस्त विषयसे चित्त संयत किया; इसके उपरान्त मनमें स्थिर किया,—"इस उपायसे मेरा विशेष मङ्गल हो सकता है। जबतक देह सुस्थ है, जितने दिनोंतक इन्द्रियकी अपटुता नहीं होती है, उसी बीचमें मैं तीर्थयात्रा करूंगा। तीर्थयात्रा ही मेरे मङ्गलका हेतु है।" सबुद्धि द्विज शिवशर्म्माने, ऐसा स्थिर करके पांच छः दिन गृहमें अवस्थान करके शुभतिथि, शुभवार, शुभलग्नमें तीर्थ उद्देशसे प्रस्थान किया। "तीर्थयात्रा-परायण सर्व्वप्राणीकी तीर्थयात्रा ही मुक्ति सोपान है" यह उनका प्रस्थानके पहले ही स्थिरनिश्चय हुआ था। तीर्थयात्रा करनेसे पहले अहोरात्र उन्होंने उपवासी रहकर यात्रादिनकी पूर्व्वाह्नमें श्राद्ध और गणेशादि देवता और ब्राह्मणोंको पूजा-प्रणामादि करके पारण किया। इसके उपरान्त तीर्थयात्रा की। अनन्तर उन ब्राह्मणने थोड़ा पथ चलकर मुहूर्त्तकाल विश्राम करनेके उपरान्त चिन्ता की,—"पृथिवीमें अनेक तीर्थ हैं, इधर जीवन भी अस्थिर है, चित्त भी चञ्चल है; पहले कौनसे तीर्थ चलूं।" अनन्तर स्थिर किया,—"आगे सप्तपुरी ही करूं, क्योंकि उनमें सर्व्वतीर्थ ही वर्त्तमान हैं।" निश्चयानुसार शिवशर्म्मा, सप्तपुरीमें अन्यतम अयोध्यापुरीमें जाकर सरयूस्नान, सरयूके अन्तर्गत उन सब तीर्थोंमें तर्पण और तीर्थश्राद्ध करके पांच दिन अयोध्यावासके उपरान्त, ब्राह्मणभोजन पुरःसर अतीव आनन्दके साथ तीर्थराज प्रयागधाममें आये। (माघस्नानके अनुरोधसे पहले प्रयाग नहीं गये; दूरवर्त्ती अयोध्या गये थे, उसके उपरान्त प्रयागमें प्रतिनिवृत्त हुए।) जहां देव दुर्लभा श्वेत-कृष्णा दो प्रधान नदियां (गङ्गा-यमुना) वर्त्तमान हैं, मनुष्य जहां स्नान करनेसे परब्रह्म प्राप्त होते हैं,—प्रजापतिका 'वही पुण्यक्षेत्र सभीके लिये दुर्लभ है। पुञ्ज पुञ्ज पुण्यबल होसे यह तीर्थ समागम होता है; राशि राशि

अर्थव्यय करनेसे या अन्य किसी उपायसे नहीं होता। कलिकाल-प्रशमनी मङ्गलमयी यमुना और पुण्यसलिला गङ्गा जिस स्थलमें मिलिता हुई हैं, सर्व्वविध यागकी अपेक्षा प्रकृष्ट होने हीसे उसका नाम प्रयाग है। प्रयाग सलिलमें स्नानरूप यागकारी मनुष्योंका पुनर्ज्जन्म नहीं होता। इस प्रयागमें शूलटङ्क नामक विख्यात महेश्वर स्वयं अवस्थिति करते हुए प्रयाग-स्नात प्राणियोंको मुक्तिपथ उपदेश करते हैं। मार्कण्डेय, जिसे अवलम्बनकर प्रलयकालमें अवस्थान करते हैं, जिसका मूल सप्तपाताल गामी है, वह अक्षयवट इसी प्रयागमें है। जान रखना, कि साक्षात् ब्रह्मा होने यह वटरूप धारण किया है। उस अक्षयवटके समीप ब्राह्मणभोजन करानेसे अक्षय पुण्यलाभ होता है। इस प्रयागधाम हीमें देवमान्य लक्ष्मीपति, वैकुण्ठसे श्रीमाधवरूपमें आकर प्रयागसेवियोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। प्रयाग सम्बन्धमें 'श्रुति' है,—"जहां शुक्ल-कृष्णा दोनो नदियां हैं, वहां स्नान करनेसे निश्चय ही मुक्तिलाभ होता है। शिवलोक, ब्रह्मलोक, उमालोक, कुमारलोक, वैकुण्ठ, सत्यलोक, तपोलोक, जनलोक, महर्लोक, स्वर्लोक, भुवर्लोक, भूर्लोक नागलोक,—अधिक क्या, समस्त जगतकी चारो ओरसे उन सब स्थानोंके अधिवासी प्राणिगण, हिमालयादि पर्व्वतगण और कल्पवृक्षादि वृक्षगण भी माघमासके अरुणोदय कालमें स्नान करनेके लिये प्रयाग आते हैं। दिगङ्गनागण, प्रयागवायुसे भी प्रार्थना करती हैं, वह कहती हैं,—"क्या करें हम पङ्गु हैं, प्रयागकी वायु ही आकर हमें पवित्र करे।" अश्वमेध प्रभृति यज्ञ और प्रयागधामकी धूलि, ब्रह्माने पहले इन दोनोको तोला था; किन्तु वह सभी यज्ञ प्रयाग-धूलि सदृश नहीं हुए। बहुजन्मार्ज्जित मज्जागत भी पापराशि प्रयागके नाम श्रवणमात्रसे अति व्यस्तताके साथ विनष्ट होते हैं। इस विषयमें सन्देह नहीं, कि यह प्रयाग धर्म्मतीर्थ, अर्थतीर्थ कामतीर्थ और मुक्तितीर्थ है। ब्रह्महत्यादि पापराशि प्राणियोंपर तभीतक गर्ज्जन करते रहते हैं, जबतक वह कलुषविनाशी प्रयागसलिलमें माघ मासमें स्नान नहीं करते। "ज्ञानियोंका सतत विज्ञेय विष्णुका परम पद" इस अर्थमें "तद्विष्णोः" इत्यादि यह जो मन्त्र वेदमें पुनः पुनः पठित हुए हैं, प्रयाग ही उनका तात्पर्य्य है। कारण, रजोगुणरूपा सरस्वती, तमोगुणरूपा यमुना और सत्त्वगुणात्मिका गङ्गा—यह सबको निर्गुण ब्रह्म प्राप्त करती हैं। यह त्रिवेणी ही ब्रह्म पद-प्राप्तिका सोपान है। श्रद्धासे हो, अश्रद्धासे हो एक बार स्नान मात्र हीसे देहशुद्धि-प्राप्त प्राणीका ब्रह्मपद-प्राप्ति सोपान यह त्रिवेणी है। काशी नाम्नी एक त्रिभुवन प्रसिद्धा रमणी हैं। लोलार्क और केशव उनके चपल-नयनयुगल

हैं, वरुणा नदी और असि नदी उनके बाहुयुगल हैं और यह जो कथित त्रिवेणी है, यही अक्षय सुखप्रदायिनी उनकी वेणी है। अगस्त्याने कहा, हे सहधर्म्मिणि! सर्व्वतीर्थ-सेवित तीर्थराज प्रयागका गुण-वर्णन जगतमें कौन कर सकता है? पापियोंके जो सब पाप अन्य अन्य तीर्थोंमें प्रक्षालित होते हैं, वह सब तो उसी उसी तीर्थमें रह जाते हैं; इसीलिये अन्यान्य तीर्थ वह सब पाप-मोचनके लिये प्रयाग तीर्थकी सेवा करते हैं; इसीलिये सर्व्वापेक्षा प्रयाग श्रेष्ठ हैं। सुबुद्धि ब्राह्मण शिवशर्म्मा, प्रयागकी गुणावली जानकर माघमासके भोर वहां अवस्थानपूर्व्वक, वाराणसी पुरीमें आये। वाराणसी प्रवेश करते ही देह-लिविनायककी देख भक्तिके साथ घृताक्त सिन्दूर द्वारा उन्हें अनुलिप्त किया। महा महा उपसर्ग-समूहसे वह भक्तोंकी रक्षा करते हैं। उन्हें पांच मोदक निवेदन देकर उन्होंने काशी क्षेत्रमें प्रवेश किया। उन्होंने मणिकर्णिकामें आकर देखा,—कि जाह्नवी उत्तरवाहिणी और क्षीणपाप-पुण्य शिवतुल्य मनुष्यगण कर्त्तृत आवृता हैं। हे शुद्धचित्ते! लोपामुद्रे! विशुद्ध-बुद्धि प्राप्त शिवशर्म्माने उस निर्म्मल सलिलमें सवस्त्र स्नान करके देवगण, मनुष्यगण, ऋषिगण, पितृलोक और अपने पिता पितामहादि उद्देशसे तर्पण किया; कारण, वह कर्म्मकाण्ड जानते थे! इसके उपरान्त उन्होंने प्रथम पञ्चतीर्थ करके यथाशक्ति धन व्यय करते हुए विश्वेश्वरकी आराधना की। वह पुरारिनगरी वाराणसीको पुनः पुनः देखकर भी "यह स्थान मैंने देखा वा नहीं"—सोचकर विस्मित होने लगे। वाराणसी देखकर शिवशर्म्मा कहने लगे,—कि तत्त्वविचार वा व्यवहार किसी प्रकार भी स्वर्गनगरी, काशीसे तुलनीय नहीं हो सकती। कारण, स्वर्ग-नगरी और वाराणसीका साधर्म्म्य नहीं है; स्वर्गनगरी विधाताकी सृष्ट है और काशी स्वयं ईश्वरकी सृष्ट है; सामान्य मणिरत्नसे स्वर्गपुरीकी रचना है और महार्ह रत्न-निचयसे काशीपुरीकी रचना है! स्वर्ग-पुरीमें नानाविध संसार-बन्धनका बाहुल्य है और काशीमें उस संसार बन्धनका प्रकार अपगम है,—दोनोकी तुलना होगी कैसे? असत्शास्त्र और ब्रह्मप्रतिपादक शास्त्रमें जैसा भेद है, काशी और स्वर्गपुरीमें भी वैसा ही भेद है। चित्रगुप्तकी लिखी ललाटलिपि भी काशीमें खण्डित होती है, कारण, और जन्म नहीं होता। इस काशीके जलमें भी अचिन्तनीय शक्ति है, देवता प्रशंसा करके जो अमृत पान किया करते हैं, वह तो किसी काम होका नहीं है। काशीका जल एक बार पीनेसे और कभी माताका स्तनदुग्ध पान करना न पड़ेगा (अर्थात् पुनर्ज्जन्म न होगा); किन्तु मात्र अमृतपानसे वह नहीं होता।

शास्त्रयोनि महेश्वरकी चिन्तामें त्रिविधताप-शून्य सत्कर्म्मकर्त्ता जनगण, इस काशी नगरीमें अति अल्प कर्म्म भी विश्वेश्वरमें अर्पण नहीं करते; इसलिये यह सब लोग, सर्व्वतोभावसे शिवपारिषद नन्दि-भृङ्गि प्रभृतिके तुल्य हैं। फलदानोन्मुख प्राक्तन पुण्यराशिके बलसे इस काशीमें अवस्थित प्राणियोंके अन्तकालमें स्वयं चन्द्रशेखर महादेव प्रणव उपदेश करते हैं; इसलिये इस काशीका स्तव कौन न करेगा? संसारी व्यक्तिवर्गके चिन्तामणिस्वरूप भगवान् शिव, मृत्यु समयमें 'इस स्थानस्थित जनगणकी कर्णिका वा कर्णकुहरमें सहसा तारकब्रह्म उपदेश करते हैं, इसी-लिये इसका नाम मणिकर्णिका है। इस स्थानमें मोक्षलक्ष्मी महापीठ वाराणसीके बीच मणिस्वरूप और मोक्ष-लक्ष्मीचरणकमलकी कर्णिका तुल्य है, इसीलिये लोग इसे मणिकर्णिका कहते हैं। इस स्थानके अधिवासी जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज प्राणिगण, देवगणकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ हैं। कारण, उन सब प्राणियोंके मुक्ति करतलस्थ है और देवगण मुक्तिलाभसे वञ्चित हैं। मैं दुर्व्वृत्त और मूढ़चित्त हूं; इतने दिनों मेरा जन्म वृथा गया। कारण, अबतक मैंने मुक्ति-प्रकाशिका काशीका दर्शन नहीं किया था। शिवशर्म्मा, उस विचित्र पुण्यक्षेत्रको पुनः पुनः नयनगोचर करके भी तृप्तिलाभ कर नहीं सके। उन्होंने सोचा,—"सर्व्वोत्कृष्ट निर्व्वाणमुक्ति प्रदायिनी वाराणसी, सप्तपुरीके बीच श्रेष्ठ है, मैं यह जानता हूं सही, किन्तु दूसरी चार पुरियां मैंने अब-तक नहीं देखीं। उन सब पुरियोंके प्रभावसे अवगत होकर मैं फिर यहीं आऊंगा।" शिवशर्म्मा एक वर्षतक प्रति दिवस तीर्थयात्रा करके भी काशीके सब तीर्थोंकी सेवा कर नहीं सके। कारण, काशीकी तिल तिल भूमिमें एक एक तीर्थ है। अगस्त्यने कहा,—देवि! लोपमुद्रे! कैसा आश्चर्य्य है! शिवशर्म्मा, नाना प्रमाणसे काशीक्षेत्रकी परम गुणावलिसे विदित होकर भी मनके वेगसे उस स्थानसे निकले। सुन्दरि! शास्त्र और प्रमाण क्या करेगा? महामाया भवितव्यताके कौन निवारण कर सकता है? उच्छलित चित्त और उच्छलित जलको कौन विपरीत पथमें ले जा सकता है? मन और जल उच्चस्थानमें रहकर अपनी स्वाभाविक चञ्चलता नहीं छोड़ते। इसके उपरान्त शिवशर्म्मा क्रमसे देश-देशान्तर अतिक्रम करके कलि और कालकी अस्पृष्ट महाकाल नगरीमें उपस्थित हुए। जो कल्प कल्पमें अपनी लीलासे अखिल ब्रह्माण्ड लय करते हैं, फिर उस कालको भी लय करनेसे शिवका नाम महाकाल पड़ा है। जगत्को पापसे परित्राण करनेके कारण महाकाल-नगरी अवन्ती नामसे पुकारी जाती है।

युग युगमें महाकालनगरीका नाम-भेद होता है,—कलिकालमें उस स्थानका नाम उज्जयिनी है। इस उज्जयिनीमें प्राणीके मरकर शव होनेसे उससे पूतिगन्ध नहीं निकलता और स्फीतभाव भी नहीं होता। इस नगरीमें यमदूतगण कभी प्रवेश करने नहीं पाते और इस जगह कोटिसे अधिक शिवलिङ्ग वर्त्तमान हैं। पद पदपर शिव-लिङ्ग हैं! एक ज्योतिर्म्मय शिवलिङ्ग ही हाटकेश महाकाल और तारकेश—यह त्रिमूर्त्ति होकर, त्रैलोक्य व्याप्त करके अव-स्थान करता है! जो सब द्विजाति इस उज्जयिनीमें सिद्धवटज्योति और ज्योति-लिङ्गका दर्शन करते हैं अथवा महाकाल दर्शन करते हैं, उन्हें राशि राशि पुण्य होता है। जो संसार-क्लिष्ट व्यक्तिगण कभी महा-काललिङ्ग दर्शन करते हैं, उनके पाप नष्ट होते हैं और यमदूत उन्हें देख नहीं पाते। सूर्य्यरथवासी-तुरङ्गम-पृष्ठदेशमें महाकाल मन्दिरके पताकाग्र-स्पर्शसे आकाशमें सूर्य्य सारथि अरुणके कशाघात-कष्टसे क्षणकालके लिये वह अपनीत हो जाते हैं। "महा-काल, महाकाल, महाकाल" इस तरह जो सर्व्वदा महाकालको स्मरण करते रहते हैं,—विष्णु और शिव, उन्हें निरन्तर मनमें रखते हैं। ब्राह्मण शिवशर्म्मा, महाकाल शिवकी यथोक्त आराधनाकर त्रिभुवन कमनीय काञ्ची नगरीमें गये। वहां साक्षात् लक्ष्मीकान्त अवस्थित हैं; वह इस काञ्ची-निवासी प्राणिगणका इहपरलोक श्रीकान्त क्रिया करते हैं, यह निश्चय है। वह कान्तिसज्जनगण सेविता कान्तिमती काञ्ची नगरी देखकर शिवशर्म्मा भी कान्तिमान् हुए। उस जगह कोई भी कान्तिहीन नहीं है। सर्व्वकर्म्मवेत्ता शिवशर्म्मा उस तीर्थका कर्त्तव्य-कर्म्म सब सम्पादन करके वहां सात दिन रहकर द्वारका नगरीमें गये; वहां चतुर्व्वर्गके द्वार सर्व्वत्र वर्त्तमान हैं; तत्त्ववेत्ता पण्डितगणने, इसीलिये उस नगरीको द्वारावती कहा है। अहा! जिस जगह प्राणिगणके अस्थिसञ्चयमें भी चक्रचिह्न चिह्नित हैं, उस स्थानके अधि-वासी शङ्खचक्रान्वित करकमलसे शोभित होंगे अर्थात्‌ विष्णुसारूप्य प्राप्त होंगी, इसमें वैचित्र्य ही क्या है। यम वारंवार निज दूतोंको शिक्षा दिया करते हैं,—"जिन्होंने द्वारावतीका नाम ग्रहण भी किया है, उन्हें परित्याग करना। द्वारकाके गोपीचन्दनका जैसा सुगन्ध है, चन्दनमें वैसा सुगन्ध कहां है? द्वारकाके गोपीचन्दनका जैसा वर्ण है, सुवर्णमें वह वर्ण कहां है? द्वारकाके गोपीचन्दनमें जैसी पवित्रता है, अन्यान्य तीर्थमें वह पवित्रता कहां है? दूतगण! श्रवण करो;—जिसका ललाटदेश गोपीचन्दनसे चिह्नित है, ज्वलन्त प्रदीपकी तरह यत्नके साथ दूरसे उन्हें परित्याग करना। हे भटगण! जो तुलसी भूषित हैं, जो तुलसी-नाम

जपते हैं इसके उपरान्त जो तुलसीकानन की रक्षा करते हैं, उन्हें भी दूरसे परित्याग करना। जलधि, युग युगसे द्वारिकाकी रत्नराजि अपहरण करते करते अब "रत्नाकर" नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। जो सब प्राणी कालवशसे द्वारका तीर्थमें मरते हैं, वह वैकुण्ठमें पीताम्बरधर और चतुर्भुज होते हैं अर्थात् विष्णुके सारूप्य सालोक्य मुक्तिलाभ करते हैं।" शिवशर्म्माने आलस्य-रहित होकर द्वारावतीमें और द्वारावतीके अन्तर्गत सब तीर्थोंमें स्नान और देव, ऋषि, मनुष्य और पितृगणका तर्पण किया। इसके उपरान्त शिवशर्म्मा मायापुरी गये, यहां वैष्णवी माया मायापाशमें नहीं बांधती और यह पापियोंको दुर्लभा है। इस स्थानको कोई कोई हरिद्वार; कोई कोई मोक्षद्वार और कोई कोई मायापुरी कहते हैं। गङ्गा इसी जगहसे निकलकर पृथिवीमें भागीरथीके नामसे विख्याता हुई हैं। इस तीर्थके नामोच्चारण मात्रसे मनुष्यका पापराशि सहस्रधा विदीर्ण होता है। वैकुण्ठका प्रधान सोपान होनेकी वजह लोग इस स्थानको हरिद्वार कहते हैं। मनुष्य यहां स्नान करके विष्णुका वह परमपद लाभ करते हैं। द्विजसत्तम शिवशर्म्माने वहां तीर्थोपवास, निशाजागरण, गङ्गामें प्रातःस्नान और तर्पणीय देव मनुष्य ऋषि पितृगणका सम्पूर्णरूपसे तर्पण करके जब पारण करनेका अभिलाष किया, उसी समय, शीतज्वरसे आक्रान्त और आतुर होकर अतिशय कम्पित होने लगे। एक तो विदेशी, दूसरे अकेले, तिसपर अतिशय ज्वरसे पीड़ित, इसलिये ब्राह्मण बड़े ही चिन्तामग्न हुए। उन्होंने सोचा,—यह क्या हुआ! अगाध महासमुद्रमें पोत भङ्ग हुआ, सांयात्रिक जिस तरह जीवन और धनसे निराश होते हैं, उसी तरह ब्राह्मणने चिन्तार्णवमें निपतित होकर जीवन और धनकी आशा त्याग की;—"मेरा वह क्षेत्र, कलत्र, पुत्रगण और धनसम्पत्ति कहां है! कहां वह हमारा विचित्र हर्म्य है, कहां वह मेरा पुस्तकसम्भार है! अभीतक मेरे मनुष्य-जीवनका समय पूरा नहीं हुआ, मेरा जरा-शौक्ल्य अभीतक वैसा नहीं हुआ है; फिर भी यह निदारुण ज्वर उपस्थित हुआ! मेरा क्या ही भयङ्कर समय उपस्थित है!! मृत्यु मस्तकपर वास कर रही है—मेरा घर इस स्थानसे बहुत दूर है। जो हो, घरमें आग लगनेसे कौन कूप खोदा करता है? अब मेरी इस अति सन्तापकर विफल चिन्ताका प्रयोजन क्या है? मैं अब हर्षोत्कर्ष और मङ्गलप्रद शिवकी चिन्ता करूं। वा (उनकी चिन्ता न करनेसे भी काम चल सकता है) मैंने एक उत्तम मोक्षोपाय अनुष्ठान किया है,—मैंने मुक्तिक्षेत्र सप्तपुरी अपने नयनगोचर की है। विद्वान् लोग

स्वर्ग और मुक्तिसाधन कर रखेंगी। इन दोनोका साधन न करनेसे पश्चात्तापसे तप्त होना पड़ता है। अथवा मेरी इस धारावाहिक चिन्ताका प्रयोजन क्या है? एक समरकी मृत्यु श्रेयस्कर है और जैसी मेरी होती है, वैसी तीर्थमृत्यु भी उत्तम है। मैं तो मन्दभाग्य मनुष्यकी तरह किसी पथमें मर नहीं रहा हूं,—मैं आज गङ्गामें मरता हूं; मूढ़की तरह चिन्ता क्यों करता हूं? अस्थिचर्म्मपूर्ण इस देहके निधनसे, मैं निश्चय ही मुक्तिलाभ करूंगा।” इस तरह चिन्तापरायण शिवशर्म्माको अति निदारुण दुःख उपस्थित हुआ। कोटि वृश्चिक दंशनसे जो अवस्था होती है, शिवशर्म्मा उसी अवस्थाको प्राप्त हुए। स्मरणीय सभी बातें भूल गये; “मैं कहां हूं कौन हूं”—यह ज्ञान भी उन्हें न रहा। चतुर्द्दश दिवस इसी रूपसे रहकर शिवशर्म्मा पञ्चत्व प्राप्त हुए। तब वैकुण्ठभवनसे अत्युच्छ्रित-गरुड़ध्वज-चिह्नित किङ्किणीजालसमन्वित अति विस्तृत विमान आ उपस्थित हुआ। स्वर्ण कौशेयवसना चामर व्यजनकारिणी सहस्र सुन्दरी कन्या उस विमानमें अवस्थित थीं। पुण्यशील और सुशील नामक प्रसन्नमुख चतुर्भुज दो विष्णु-पारिषद उस विमानमें विराजमान थे। तब उन शिवशर्म्माने भौमदेह परित्याग करके उस विमानमें आरोहणपूर्व्वक दिव्यभूषण-भूषित, पीताम्बरधर और चतुर्भुजसम्पन्न होकर आकाशमार्ग अलङ्कृत किया।

सप्तम अध्याय समाप्त॥ ७॥

अष्टम अध्याय।

पिशाचलोकसे यमलोक पर्य्यन्त वर्णन।

लोपमुद्राने कहा,—हे जीवितेश्वर! आपकी श्रीमुखोच्चारित पवित्र-पुरीघटित यह पवित्र कथा श्रवण करके मेरी आशा नहीं मिटी। हे प्रभो! द्विजोत्तम शिवशर्म्माको मुक्तिदेव मायापुरीमें मरनेपर भी जो मोक्ष नहीं मिला, कहिये इसका कारण क्या है? अंगस्त्यने कहा,—हे प्रियभाषिणि! इन सब पुरियोंमें साक्षात् मोक्ष नहीं होता। इस सिद्धान्त उपलक्ष होसे पूर्व्वकालमें पूर्व्वोक्त इतिहास मैंने सुना था। कान्ते! अब पुण्यशील और सुशीलने शिवशर्म्मासे जो पाप-प्रणाशिनी विचित्रार्थशालिनी पवित्र कथा कही थी, उसे श्रवण करो। शिवशर्म्माने कहा,—हे पद्मपलाशलोचन पवित्र विष्णु पारिषदद्वय! मैं हाथ जोड़कर कुछ निवेदन करनेकी इच्छा करता हूं। साक्षात्सम्बन्धमें मैं आपके नामसे अवगत नहीं हूं; फिर भी, आकृति द्वारा जो कुछ समझता हूं, आपका नाम पुण्यशील और आपका सुशील होगा। विष्णुपारिषदद्वयने कहा,—तुमसे भगवद्भक्त व्यक्तिगणसे क्या अविदित रह सकता है? तुमने

जो कहा, हमारे वही नाम हैं। हे महाप्राज्ञ! तुम्हारे हृदयमें और भी जो कुछ जिज्ञास्य है, उसे भी निःशङ्क हो पूछो, मैं प्रीतिके साथ उसका उत्तर दूंगा। शिवशर्म्माने भगवत्परिषदोक्त यह अति प्रीतिकर मनोहर वाक्य श्रवणकर उनसे कहा,—अल्प शोभामय, अल्पपुरुषजनगणसे परिवृत इस लोकका नाम क्या है? और यह विकृताकार कौन हैं? पहले यही कहिये। विष्णुपारिषदने कहा,—यह पिशाचलोक है; यहां मांसाशी पिशाच रहते हैं। जो दान करके अनुताप करते हैं, जो पहले अस्वीकार करके फिर दान करते हैं और जो अपवित्र चित्तसे प्रसङ्गक्रमसे एकबारमात्र शिवपूजा करते है,—सखे! वह अल्पपुण्य व्यक्ति हो यह अल्पश्री पिशाच हैं। इसके उपरान्त शिवशर्म्माने जाते जाते एक लोक (स्थान) देखा; वह स्थूलोदर स्थूलवदन, मेघगभीरस्वरसम्पन्न, श्यामलाङ्ग, लोमश और हृष्टपुष्ट जनगणकी निवासभूमि थी। इसके उपरान्त उन्होंने कहा;—विष्णुपारिषदद्वय! कहिये,—यह सब व्यक्ति कौन हैं? यह कौन लोक है और इन्होंने किस पुण्यसे यह लोक लाभ किया है। विष्णु-पारिषदद्वयने कहा, यह गुह्यक-लोक है; इस स्थानके अधिवासी सब गुह्यक हैं। जो न्यायतः धनोपार्ज्जनकर भूगर्भमें छिपा रखते हैं, स्वधर्म्ममें रत रहते हैं, पोष्यवर्गोंको विभाग करके स्वयं भोजन करते हैं; क्रोध असूया जिन्हें नहीं है, वार, संक्रान्तादि पर्व्व और धर्म्माधर्म्म जो नहीं जानते, सदा सुख हीमें काल बिताते हैं,—धर्म्ममें एक धर्म्म जानते हैं,—कुलपूज्य जो ब्राह्मण हैं, उन्हें गोदान करना; वही शूद्र बहुल गृहस्थ, उक्त पुण्यबलसे यह गुह्यक होते हैं। इस गुह्यलोकमें वह भी समृद्धिसम्पन्न होकर रहते हैं। यह लोग देवगणकी तरह अकुतोभयसे स्वर्गसुख भोग करते हैं। इसके उपरान्त शिवशर्म्माने नयन-सुखकर एक स्थान देखकर पूछा, विष्णु-गणद्वय! कहिये यह कौन लोक है और यह सब व्यक्ति कौन हैं? विष्णु-पारिषद-द्वयने कहा यह गन्धर्व्वलोक है; और यह गन्धर्व्व हैं। इन सब व्यक्तियोंने उत्तम धर्म्माचरण किये थे। इस समय यह सब देवगणके गायक, चारण और स्तुतिपाठक हैं। यह सङ्गीताभिज्ञ लोग मनुष्यावस्थामें, सङ्गीतद्वारा राजाओंका सन्तोष साधन करते; धनाढ्योंका स्तव करते, इसके उपरान्त, राजप्रासादलब्ध उत्तम उत्तम वस्त्र, कर्पूरादि सुगन्धि द्रव्य और धन, अनेक वार ब्राह्मणोंको अर्पण करते, और अहोरात्र गान करते, इनका चित्त स्वर हीमें निहत था, नाट्यशास्त्र हीमें इन्होंने श्रम किया था। गीत-विद्योपार्ज्जित धन द्वारा ब्राह्मणगणको सन्तुष्ट करनेके कारण ही उत्तम पुण्यबलसे गन्धर्वलोक इन्होंने

पाया है। गीतविद्या-प्रभावसे देवर्षि नारद विष्णुलोकमें महामान्य और श्रीप्रभुके अतिशय प्रिय हैं। तम्बुरा और नारद दोनो ही देवलोकमें बहुमान्य हैं। कारण साक्षात् शिव ही स्वर-स्वरूप हैं, फिर भी वह दोनो ही स्वर-तत्त्व-विशारद हैं। केशव, वा शङ्करके समीप जब कभी कोई गान करता है, तो उसका फल निष्काम मुक्तिलाभ वा उनका सान्निध्य लाभ,—यही पण्डित लोग बताते हैं। सकामता प्रयुक्त गीतज्ञ व्यक्ति यदि गीत प्रभावसे, परमपद लाभ कर न सके, तो रुद्र वा विष्णुका अनुचर होकर उनके साथ आमोद प्रमोद करता है। इस लोकमें सर्व्वदा यह स्मृति गीत हुआ करता है,—"प्रसिद्ध गीतसमूह द्वारा सर्व्वदा हरि-हरकी पूजा करो।" शिव-शर्म्मा यह सब बातें सुनते सुनते क्षणकालमें दूसरे मनोहर लोकके समीपवर्त्ती हुए; उस समय उन्होंने पूछा, कि इन नगरादिका नाम क्या है। गणद्वयने कहा, कि यह विद्याधर लोक है। यह सब विविध विद्याविशारद मानव थे; इन्होंने विद्यार्थियोंको अन्न, वस्त्र, पादुका, कम्बल आरोग्यकर औषध प्रदान किया है। और नाना प्रकारकी कलाशिक्षा दी है; इन्हें विद्यागर्व्व नहीं था। शिष्यको पुत्रके समान देखते थे। धर्म्मके लिये इन लोगोंने वस्त्र, ताम्बूल, खाद्यद्रव्य और अलङ्कार देकर सुरूपा कन्या विवाह दी है। सकामभावसे प्रति दिन इष्ट देवताकी पूजा की है। इन सब पुण्यप्रभावसे ही यह लोग इस लोकमें वास करते हैं,—यह लोग इस समय श्रेष्ठ-योनिप्राप्तविद्याधर हुए हैं। जिस समय वह लोग इस तरह कथोपकथन कर रहे थे, उसी समय संयमनीपति सौम्यमूर्त्ति धर्म्मराज सेवाकर्म्मकुशल, तीन चार भृत्यके साथ और धर्म्मज्ञगण कर्त्तृक परिवारित होकर विमानारोहणसे वहां उपस्थित हु',—देवदुन्दुभि बजने लगी। धर्म्मराजने कहा, हे महाबुद्धे! द्विजोत्तम! शिवशर्म्मन्! साधु। साधु; आपने विप्रकुलोचित कर्म्म सम्पादन किया है। आपने पहले वेदाभ्यास किया है, गुरुगणका सन्तोषसाधन किया है, धर्म्मशास्त्र और पुराणमें धर्म्मदर्शन करके उसका आदर किया है। आपने द्रुत-विनाशी पार्थिव शरीर मुक्तितीर्थ सलिलमें प्रक्षालन किया है। जीवन-मरणमें पाण्डित्य प्रकाश आप होने किया है। यह समीचीन ही हुआ, कि सदा अपवित्र पूतिगन्ध कलेवरको आपने उत्तम तीर्थमें पुण्यरूप मूल्य लेकर विक्रय किया है। इसीलिये विचक्षण लोग पाण्डित्यका आदर किया करते हैं। कारण, पण्डितगण अहोरात्रमें एक क्षण भी व्यर्थ अतिवाहित नहीं करते। प्राणिगण, मर्त्त्यमें पांच छः निमेष कालमात्र जीवित रहते हैं, उसमें भी वह लोग गर्हित कार्य्यमें प्रवृत्त होते

हैं! शरीरका नाश अवश्यम्भावी है; धन भी मृत्यु समय रक्षक नहीं होता। इसलिये मुक्तिसाधक कार्य्यके लिये अपना न्याय यत्न कौन मूढ़ न करेगा? आयु द्रुतगामी है, लोक समुदय शोकाकुल हैं; इसलिये सुधार्म्मिक व्यक्तिगणका अपने न्याय धर्म्ममें मति होना उचित है। सत्कर्म्मका यही फल देखिये, कि आपके वन्दनीय, हमारे भी वन्दनीय यह भगवद्भक्तद्वय आपके सखा हुए हैं। इसके उपरान्त हमें आज्ञा दीजिये, हम आपकी क्या सहायता करें? अथवा मुझसे व्यक्तिका जो कर्त्तव्य है, उसे आप होने सम्पादन कर रखा है। आज मैं अतिशय धन्य हुआ; कारण, इस जगह भगवत्-पारिषद्द्वयसे मिला। हे भगवत्-पारिषद्द्वय! श्रीधरके श्रीचरण समीप हमारी सतत सेवा निवेदन कीजियेगा। इसके उपरान्त यम, विष्णुगणद्वयको बातसे अपनी पुरीमें गये। यमके प्रस्थान करनेपर ब्राह्मण शिवशर्म्माने, विष्णुगणद्वयसे पूछा,—यह तो साक्षात् धर्म्मराज हैं; ठीक सौम्यताके आकार हैं! इनकी बातें भी धर्म्मसङ्गत और मनःप्रीतिकर हैं। वही यह अति शुभलक्षणा संयमनीपुरी है; पापिगण इसके नामश्रवणसे भयभीत होते हैं। हे विष्णुदूतद्वय! मर्त्त्यलोकमें मनुष्यगण यमका स्वरूप अन्य प्रकारका (भीषण) वर्णन करते हैं; मैंने दूसरे प्रकारका देखा; कहिये इसका कारण क्या है? किस पुण्यसे इस स्थानका दर्शन होता है, कौन इस यमपुरीके अधिवासी हैं; धर्म्मराजका ऐसा ही रूप है या अन्य प्रकारका? यह सब कहिये! विष्णुपारिषद्द्वयने कहा हे सौम्य! यह धर्म्ममूर्त्ति यम, स्वभावतः निःशङ्क तुम जैसे पुण्यसम्पन्न व्यक्तियोंको उत्तम सौम्यमूर्त्तिमें दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु पापियोंके सामने यही पिङ्गल-नयन, क्रोध-रक्ताक्तनेत्र, दंष्ट्राकराल-वदन, विद्युत्सदृश रसनाद्वारा भीषण, ऊर्द्धकेश और अतिकृष्णकाय यम हैं। इन्हींका स्वर प्रलय-जलद-निर्घोषके तुल्य है; इन्हींके हाथमें कालदण्ड उठता है; इन्हींका वदनमण्डल भ्रुकुटी भीषण है; यही कहते हैं,—"अरे दुर्द्दम! इसे ला, उसे फेंक दे, इसे बांध, इस दुर्वृत्तिके मस्तकपर लौहमुद्गर द्वारा तीव्र आघात कर। इस दुष्टके दोनो पैर पकड़ शिलापर पछाड़। इसके गलेपर पैर रखकर नयनद्वय उत्पाटन कर। इसके फूले फूले दोनो गाल क्षुर द्वारा काट दे! इसके गलेमें रस्सी बांध वृक्षमें लटका रख। इसका माथा आरेसे काष्ठके तरह चीर डाल। दारुण पार्ष्णि प्रहार कर; प्रहारसे इसका मुख चूर्ण हो जावे। इस पापीके परदारस्पर्श लोलुप हाथ छेदन कर। परदार-गृह गन्ता इस पापीके पदद्वय काट डाल। इस दुरात्माने, परस्त्रीके अङ्गमें बहु नखरेखा दी है, इसके सर्व्व

शरीरमें—प्रति रोमकूपमें सूचिविद्ध कर। इस व्यक्तिने परस्त्रीका मुखाघ्राण किया है, इसके मुंहमें थूक। इस परनिन्दकके मुंहमें तीक्ष्ण शङ्कु डाल दे। अरे विकट-वक्र! इस परसन्तापकारी व्यक्तिको भर्ज्जन-पात्रमें तप्त बालू और तप्त कङ्कड़के साथ चनेकी तरह भून। अहे क्रूरलोचन! निर्द्दोषी व्यक्तिपर सर्व्वत दोषारोपकारी इस पापीका मुंह पूयशोणित-कर्द्दममें डुबा दे। अहे उत्कट! निज का अदत्त परकीय वस्तु ग्रहीताका करतल, तैलसे भिगा भिगाकर, ज्वलन्त अङ्गारेमें सेंक। अहे भीषण! गुरुनिन्दक और देवनिन्दक इन पापियोंके मुंहमें लौहशलाका डाल। परमर्म्म-पीड़िक और परच्छिद्र-प्रकाशक इन व्यक्तियोंके सन्धिस्थलमें उत्तप्त लौहशङ्कु रोपण कर। दुर्म्मुख! दूसरेके धन दान-कर्म्ममें यह पापी निषेधक हुआ था, और इस पापीने दूसरेकी वृत्ति ले ली थी, इसकी जिह्वा छेदन कर। अहे क्रोड़ास्य! इस देवस्वापहारीका और इस ब्राह्मणस्वापहारीका पेट विदारण करके शीघ्र विष्ठा-कृमिकुल द्वारा पूर्ण कर। अमुक व्यक्तिने देवता, ब्राह्मण या अतिथिके लिये कभी पाक नहीं किया,—किया तो अपने लिये। कन्धक! इसे ले जाकर कुम्भीपाक नरकमें पाक कर। हे उग्रास्य! अमुक मित्रघातीको, अमुक विश्वासघातीको और अमुक कृतघ्नको शीघ्र ही महारौरव और रौरव नामक नरकमें ले जा। हे दुर्द्दंष्ट्र! ब्रह्मघातीको अन्धतामिस्र नरकमें, सुरापायीको पूयशोणित नरकमें, सुवर्णापहारीको कालसूत्र नरकमें, गुरुपत्नीगामीको अवीचि नरकमें और इनमें प्रत्येकके प्रथम संसर्गी व्यक्तिको एक वर्षतक असि-पत्रवन नरकमें स्थापनपूर्व्वक इन सब महापातकियोंको लौहतुण्ड द्रोणकाकवृन्दके चञ्चु घातसे अत्यन्त व्यथित करते हुए तप्त लौहपूर्ण कड़ाहोमें अनवरत औटते हुए एक कल्पतक रख। अहे कूट! स्त्रीघातकको, गोघातकको और मित्रघातकको ऊर्द्ध्वपाद और अधोमुख करके शाल्मलिवृक्षमें बहुत समयतक झुला रख। हे महाभुज! जिसने मित्रपत्नीका आलिङ्गन किया था, शीघ्र ही लक् सन्दंश द्वारा उसे छेदन करके उसके वाहुद्वय कर्त्तन कर दे। जिसने दूसरेका क्षेत्र वा दूसरेका गृह अग्निदग्ध किया था, उसे महाघोर ज्वालाकील नरकमें निपातित कर। विषप्रयोगकर्त्ताको, कूटसाक्षीको, मानकूटको और तुलाकूटको कण्ठमोड़नपूर्व्वक कालकूट नरकमें डाल दे। अहे दुष्प्रेच! तीर्थजलमें जिसने थूका है, उसे 'लालापिब' नरकमें, गर्भघातकको 'आमपाक' नरकमें और परताप-प्रदाताको 'शूलपाक' नरकमें ले जा। रसविक्रयी ब्राह्मणको इक्षुयन्त्रमें निष्पीड़ित कर। प्रजापीड़क राजाको अन्धकूप नरकमें डाल दे। हे हलायुध! गोविक्रयी तिल-

विक्रयी और अश्वविक्रयी ब्राह्मणाधमको और भाण्ड-विक्रयी और सुराविक्रयी इस वैश्यको उदूखल-मूषल द्वारा पुनः पुनः कुचल! अहे दीर्घग्रीव! द्विजावमन्ता शूद्रको, द्विजके सम्मुख मञ्चारूढ़ शूद्रको अधोमुख नरकमें प्रपीड़ित कर। हे पाश-पाणे! हे कषापाणे! ब्राह्मणजेता शूद्र, ब्राह्मणाभिमानी वैश्य, याजक क्षत्रिय, वेदवर्ज्जित ब्राह्मण और लाक्षाविक्रयी, लवण-विक्रयी, मांसविक्रयी, तैलविक्रयी, विषविक्रयी, घृतविक्रयी, अस्त्रविक्रयी और ऐक्षव-गुड़ादि विक्रयी द्विजाधम,—इन सब, पापियोंके पदद्वयको दृढ़रूपसे बांधकर कषाघात करते हुए इन्हें "तप्तकर्द्दम" नरकमें ले जा। कुलपांशुला इस व्यभि-चारिणी स्त्री द्वारा तप्तलोहमय उसके उपपतिका शीघ्र आलिङ्गन करा। हे दुराधर्ष! जिस व्यक्तिने स्वयं कोई व्रत ग्रहण करके अजितेन्द्रियता प्रयुक्त त्याग किया है, उसे 'वज्र-भ्रमरदंशक' नरकमें ले जा।" आत्मकर्म्म-शङ्कित दुर्व्वृत्त पापिष्ठ-गण दूर हीसे यमकी यह सब बातें सुन पाते हैं और साक्षातमें इनकी वह अति भयङ्कर मूर्त्ति दर्शन करते हैं। जिन्होंने अपने औरसपुत्र निर्व्विशेषसे प्रजापालन किया है और धर्म्मतः दण्डप्रयोग किया है, वही सब राजे इन यमराजके सभासद् हैं। जिनके राज्यमें, वर्ण और आश्रमके अनुरूप कर्म्म सब प्रजागण निर्व्वाह करते हैं, और अकाल मृत्यु जिनके राज्यमें नहीं है, वही सब राजे इन यमराजके सभासद् हैं। जिनके राज्यमें दरिद्र नहीं हैं, दुर्व्वृत्त नहीं हैं, विपन्न नहीं हैं और शोकार्त्त व्यक्ति नहीं हैं, वही सब राजे इन यमराजके सभासद हैं। सदा स्वधर्म्म-निरत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और संयमशाली अन्यान्य लोग भी इस यमराजधानी संयमनी पुरीमें वास करते हैं। उशीनर, सुधन्वा, वृषपर्व्वा, जयद्रथ, रजि, सहजित्, कुक्षि, दृढ़धन्वा, रिपुञ्जय, युवनाश्व, दन्तवक्र, मित्रमङ्गल-कर नाभाग, करन्धम, धर्म्मसेन, परमर्द्द और परान्तक—यह सब और अन्यान्य नीति-वर्त्ती बहुतर धर्म्माधर्म्म-विचाराभिज्ञ राजे यम-देवसभामें आसीन रहते हैं। इनके अतिरिक्त और जिन्हें भयङ्कर दण्डपाश-धारी उग्रानन यमदूतवृन्द और यमलोक दर्शन कभी करना नहीं पड़ता, उनकी बात भी कहता हूं। हे भटगण! जो सर्व्वदा गोविन्द! माधव! मुकुन्द! हरे! मुरारे! शम्भो! शिव! ईश! शशिशेखर! शूलपाणे! दामोदर! अच्युत! जनार्द्दन! वासुदेव!—यह सब कहा करते हैं, उन्हें ग्रहण नहीं करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा, "गङ्गाधर! अन्धकरिपो! हर! नीलकण्ठ! वैकुण्ठ! कैटभरिपो! कमठ! (कूर्म्मरूप!) अब्जपाणे! (पद्महस्त!) भूतेश! खण्डपरशो! मृड! चण्डिकेश!—

ऐसा कहा करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा, विष्णो! नृसिंह! मधुसूदन! चक्रपाणे! गौरीपते! गिरीश! शङ्कर! चन्द्रचूड़! नारायण! असुरविहिंगा! (असुर-नाशन!) शार्ङ्गपाणे!—ऐसा कीर्त्तन करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा मृत्युञ्जय! उग्र! विषमेक्षण! (विरुपाक्ष!) कामशत्रो! (स्मरारे!) श्रीकान्त! पीतवसन! अम्बुदनील! (घनश्याम!) शौरि! ईशान! कृत्तिवसन! (कृत्तिवासः!) त्रिदशैकनाथ! (देवदेव!)—ऐसा कहते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा, लक्ष्मीपते! मधुरिपो! पुरुषोत्तम! आद्य! श्रीकण्ठ! दिग्वसन! (दिगम्बर!) शान्त! पिनाकपाणे! आनन्दकन्द! (आनन्दमूल!) धरणीधर! पद्मनाभ!—ऐसा कहा करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण, जो सर्व्वदा, सर्व्वेश्वर! त्रिपुरसूदन! देवदेव! ब्रह्मण्यदेव! गरुड़ध्वज! शङ्खपाणे! त्र्यक्ष! (त्र्यम्बक!) उरगाभरण! बालमृगाङ्क मौले (शशाङ्ककलाशेखर!)—इस तरह कहते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा, श्रीराम! राघव! रमेश्वर रावणारे! भूतेश! मन्मथरिपो! (मदनवैरिन्!) प्रमथाधिनाथ! चाणुर-मर्द्दन! हृषीकपते! (हृषीकेश!) मुरारे!—ऐसा कीर्त्तन करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा, शूलिन्! गिरीश रजनीशकलावतंस! (इन्दुकलाशेखर!) कंसप्रणाशन! (कंसघातक!) सनातन! केशिनाश! (केशिमर्द्दन!) भर्ग! त्रिनेत्र! भव! भूतपते! पुरारे!—ऐसा कहा करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। गोपीपते! (गोपीजनवल्लभ!) यदुपते! वसुदेवसूनो! (वासुदेव!) कर्पूरगौर! (कर्पूरकेसे शुक्लवर्ण!) वृषभध्वज! भालनेत्र! (जिनके ललाटमें अन्यतम चक्षु है) गोवर्द्धनोद्धारण! (जिन्होंने गोवर्द्धन धारण किया था) धर्म्मधुरीण! (धर्म्मधुरन्धर!) गोप! (गोचारणकारिन्!)—ऐसा कहा करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे भटगण! जो सर्व्वदा स्थाणो! त्रिलोचन! पिनाकधर! स्मरारे! कृष्ण! अनिरुद्ध! कमलाकर! कल्मषारे! (पापनाशन!) विश्वेश्वर! त्रिपथगार्द्रजटाकलाप! (जिनके जटाकलापसे गङ्गाप्रवाहसिक्त है)—ऐसा कहा करते हैं, उन्हें ग्रहण न करना। हे ब्राह्मण! इन अष्टोत्तर शत सुचारु नाम स्वरूप ललित-रत्नराजि द्वारा ग्रथिता सन्नायका दृढ़गुणा यह माला जो व्यक्ति कण्ठगत करता है, उन्हें उग्ररूपी यम दर्शन करना नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त पृथिवीमें जो विष्णुचिह्न शङ्खचक्रादि और रुद्रचिह्न रुद्राक्ष विभूति प्रभृति धारण करते हैं, उन्हें भी ग्रहण न करना।" हे द्विजवर! यम, धर्म्मराज हैं, इसीलिये पृथिवीगम-

नोन्मुख अपने भृत्यगणको वह सर्व्वदा यह शिक्षा दिया करते हैं। अगस्त्यने कहा,—जो व्यक्ति धर्म्मराज-विरचिता निखिलपाप-बीजविनाशिनी ललित-रचना यह हरिहर-नामावली एकाग्रचित्तसे नित्य जप करते हैं, उन्हें फिर मातृस्तन्य पान करना अर्थात् पुनर्ज्जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता। प्रिये! शिवशर्म्माने हृष्टवदनसे यह निर्म्मल कमनीय कथा सुनते सुनते सामने अप्सरा-नगरी देखी।

अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

अप्सरालोक और सूर्य्यलोक।

शिवशर्म्माने कहा,—रूप-लावण्य-सौभाग्यशालिनी दिव्यालङ्कारधारिणी, दिव्य भोगान्विता यह रमणियां कौन हैं? विष्णु-पारिषद्द्वयने कहा, कि यही अप्सरा हैं। अप्सरागण इन्द्रादि देवगणकी प्रियकारिणी वारविलासिनी हैं। गीताभिज्ञता नृत्य-नैपुण्य, वाद्यविद्यामें विचक्षणता, कामकेलि-कलामें अभिज्ञता और द्यूतविद्यामें पारदर्शिता, इनमें है। रसिकता, भावज्ञान, समयके अनुसार वाक्प्रयोग चातुर्य्य, नानादेश-विशेषाभिज्ञता, नाना भाषामें पाण्डित्य और रहस्य-वृत्तान्त नैपुण्यमें भी यह सब सम्पूर्ण हैं। यह अप्सरागण,—आनन्दसे और स्वच्छन्दसे दलकी दल भ्रमण करती हैं,—अकेली नहीं रहतीं। हाव-भाव-प्रकाश-चतुरा, सदालाप-विदुषी यह अप्सरागण अपने हावभावसे युवजनका मनोहरण किया करती हैं। त्रिलोकविजयी मदनके मोहनास्त्रस्वरूप यह रमणियां, पूर्व्वकालमें क्षीरोद-मथनसे उत्पन्न हुई थीं। उर्व्वशी मेनका, रम्भा, चन्द्रलेखा, तिलोत्तमा, वपुष्मती, कान्तिमती, लीलावती, उत्पलावती, अलम्बुषा, गुणवती, स्थूलकेशी, कलावती, कलानिधि, गुणनिधि, कर्पूर-तिलका, उर्व्वरा, अनङ्गलतिका, मदनमोहिनी, चकोराक्षी, चन्द्रकला, मुनि-मनोहरा, ग्रावद्रावा, तपोद्वेष्ट्री, चारुनासा, सुकर्णा, दारु-सञ्जीवनी, सुश्री, क्रतुशुल्का, शुभानना, तपःशुल्का, तीर्थशुल्का, हिमावती, पञ्चाश्वमेधा, राजसूयार्थिनी, अष्टाग्निहोमा और वाजपेयशतोद्भवा, इत्यादि प्रधान अप्सरा षष्टि सहस्र हैं। इस अप्सरा-लोकमें स्थिर-यौवना स्थिरलावण्य और भी कितनी ही रमणियां बसती हैं। उनके भी दिव्य वस्त्र, दिव्य माल्य, दिव्य गन्ध-अनुलेपन है। वह भी दिव्य-भोगसम्पन्न और इच्छामत शरीर धारण कर सकती हैं। जो सब रमणियां मासोपवास व्रत करके एक बार, दो बार—अधिकसे अधिक, तीन बार, दैवयोगसे ब्रह्मचर्य्य भ्रष्ट होती हैं, वही दिव्य-भोग-सम्पन्ना, रूप-लावण्यशालिनी और सर्व्वकाम-प्राप्त होकर इस अप्सरालोकमें वास करती हैं। यथाविधि

साङ्गकाम व्रत अनुष्ठान करनेसे उसकी फलसे इस लोकमें समागत होकर खेचरचारिणी देवभोग्या होती हैं। हे द्विज! जिन सब पतिव्रता नारियोंने बलवान् पुरुषद्वारा बलपूर्व्वक आक्रान्त होकर स्वामिबोधसे उसके साथ कभी सङ्ग किया है, वही इस लोकमें आती हैं। स्वामी प्रवासमें, सर्व्वदा ही जिन्होंने ब्रह्मचर्य्य पालन किया है, किन्तु दैवात् एक बार ब्रह्मचर्य्यभ्रष्ट हुई हैं;—वही सब रमणी इस अप्सरालोकमें वास करती हैं। जो वरवर्णिनी, द्विजदम्पतीकी पूजा करके "कोऽदात्" इत्यादि मन्त्रद्वारा और "कामरूपी देव प्रसन्न हो" यह कहकर एक वर्ष यावत् प्रति संक्रान्तिको अथवा प्रति व्यतीपात योगमें नानाविध सुगन्धि कुसुम, सुगन्धि चन्दन, सुशुभ्र कर्पूर, सुसूक्ष्म वस्त्रराजि, समदीर्घ कठिन सुपक्व स्थूलनील शिरायुत सुवर्ण-वर्ण साग्र सुगन्धि उपकरण-पूर्ण ताम्बूलसमूह, विचित्राभरण-भूषित अनेक शय्या और रतिमन्दिरोपयुक्त बहुतर कौतुक वस्तु,—यह काम्यभोग दान करती हैं, वही रमणी अप्सराओंमें श्रेष्ठा होकर एक कल्पतक इस स्थानमें वास करती हैं। जो रमणी कन्या कालमें कभी किसी देवता द्वारा उपभुक्ता होकर तबसे वह पूर्व्ववृत्त ध्यान करती हुई ब्रह्मचर्य्य पालन करके यथासमय निधन प्राप्त होती हैं, वह दिव्यरूपिणी और दिव्यभोगिनी होकर इस अप्सरा लोकमें आती हैं। द्विजाग्रगण्य शिवशर्म्मा इस प्रकार अप्सरालोकलाभका निदान सुनते सुनते, क्षणभरमें विमानयोगसे सौरलोक प्राप्त हुए। कदम्ब-पुष्प जैसे किञ्जल्कजालद्वारा सर्व्वतोभावसे आवृत होते हैं, इस सौर-लोकमें भी वैसे ही सूर्य्य किरणजालाद्वारा चारो ओर दैदीप्यमान हैं; नौ सहस्र योजन परिमित सप्ताश्व-चालित, अखररश्मिधारी अरुणद्वारा सम्मुखमें अधिष्ठित, अप्सरा मुनि गन्धर्व्व सर्प यक्ष और राक्षसके आश्रय अतिवेगगामी विचित्र एकचक्र रथ और हाथमें दो पद्म देखकर शिवशर्म्माने सूर्य्यकी पहचाना, इसके उपरान्त हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया। सूर्य्यदेवने शिवशर्म्माका प्रणाम, भ्रूभङ्गिद्वारा अनुमोदन करते हुए क्षणभरमें अतिदूर गगनमार्ग अतिक्रम किया। अति सुखी शिवशर्म्माने सूर्य्यके अतिक्रान्त होनेपर भगवद्भक्तद्वयसे पूछा, कि आप लोग बन्धुत्वके अनुरोधसे यह कहिये, कि किस पुण्यसे सूर्य्यलोक लाभ किया जाता है। सप्तपद एकत्र गमन करने हीसे बन्धुता होती है। विष्णु-पारिषदद्वयने कहा, कि हे महाप्राज्ञ ब्राह्मण! तुमसे अवक्तव्य कुछ नहीं है। सत्सङ्ग हीमें साधुओंका सत्कथा-प्रसङ्ग हुआ करता है। जो सर्व्वभूतके एक मात्र नियन्ता परम कारण हैं, जिनका नाम-गोत्र-रूपादि नहीं है, जगतका आविर्भाव-तिरोभाव जिनकी भ्रूभंङ्गीका फल है,—वही

सर्व्वात्मा वेदप्रतिष्ठाता परमपुरुष सर्व्वदा ही स्पष्टरूपसे यह कथा कहते हैं, "जो आदित्यमण्डलवर्त्ती पुरुष हैं, वही मैं हूं; जो दूसरोंकी उपासना करते हैं,वह अन्धतमसमें प्रविष्ट होते हैं।" हे द्विजोत्तम! यह निश्चितार्था श्रुति द्वारा ब्राह्मणगण पुनः पुनः स्थिर करके एकमात्र उन्हीं आदित्यरूपी ब्रह्मकी ही उपासना करते हैं। जो द्विज यथासमय सावित्री-उपदिष्ट होकर त्रिकालमें (प्रातः, मध्याह्न, सायाह्नको) उनका जप नहीं करते, इसमें संशय नहीं, कि वह सप्ताहके भीतर पतित होते हैं। प्रातःकाल, सूर्य्यके अर्द्धोदय पर्य्यन्त सूर्य्याभिमुख दण्डायमान होकर सावित्री जप करना; सायं सन्ध्याको आसनपर अवस्थित होकर नक्षत्रोदय पर्य्यन्त सूर्य्याभिमुखमें जप करना और सूर्य्य जबतक रहें, मध्यम सन्ध्यासमय तबतक, इस समय भी सूर्य्याभिमुख दण्डायमान होकर सावित्री जप करना। काललोप कर्त्तव्य नहीं है, इसलिये कालकी अपेक्षा रखो। सब ओषधियां काल होमें फलवान् होती हैं; वृक्षराजि भी काल हीमें फलवान् होती है, जलदजाल काल हीमें वृष्टि किया करते हैं, इसलिये (काल ही बलवान् है) काल लङ्घन करना कर्त्तव्य नहीं है। सूर्य्य, मन्देह नामक राक्षसगणके देहनाशके लिये, उदय अस्तमें द्विज-प्रदत्त अञ्जलित्रय-परिमित जलकी आकांक्षा करते हैं। जो व्यक्ति यथाकालमें गायत्री मन्त्रपूत तीन अञ्जलि जल सूर्य्यको प्रदान करते हैं, उन्हें त्रैलोक्यदानका फल होता है। सूर्य्यदेव यथाकाल सम्यक उपासित होनेपर क्या नहीं प्रदान करते हैं! वह आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य्य, धनराशि और पशुवृन्द प्रदान करते हैं; पुत्र, मित्र, कलत्र और विविध-क्षेत्र दिया करते हैं और अष्टविध ऐश्वर्य्य, स्वर्ग और मुक्ति भी प्रदान करते हैं। अष्टादश प्रकारकी विद्याओंमें मीमांसा अति गरीयसी है; तर्कशास्त्र समुदय मीमांसाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ हैं; पुराण, तर्कशास्त्रसे भी गुरुतर है। हे द्विज! धर्म्मशास्त्र पुराणकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है; वेद धर्म्मशास्त्रसे भी गुरु है। उपनिषत् अन्य वेदकी अपेक्षा श्रेष्ठ है; गायत्री उपनिषदसे भी बड़ी है। प्रणवान्विता गायत्री, सब मन्त्रोंकी अपेक्षा दुर्लभ है। वेदत्रयमें गायत्रीसे अधिक और दृढ़ उक्त नहीं है। गायत्री तुल्य मन्त्र नहीं है, काशी सदृशी पुरी नहीं है, विश्वेश्वरसा लिङ्ग नहीं है, यह सत्य सत्य, पुनः पुनः सत्य है। गायत्री,—वेदजननी, गायत्री,—ब्राह्मणजननी है। गायत् अर्थात् गानकर्त्ताको त्राण करनेके कारण, इनका नाम "गायत्री" पड़ा है। गायत्री और सविता (सूर्य्य) इन दोनोमें वाच्य

वाचकका सम्बन्ध है। साक्षात् सविता गायत्रीका वाच्य और गायत्री वाचिका है। जितेन्द्रिय विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी गायत्रीके प्रभाव हीसे राजर्षित्व परित्याग करके ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त हुए। और अन्य जगत्सृष्टि सामर्थ भी वह इसी गायत्री प्रभावसे प्राप्त हुए हैं;—सम्यक् उपासिता होनेसे यह गायत्री क्या नहीं दिया करतीं, वेदपाठसे भी ब्राह्मण नहीं होता, शास्त्र-पाठसे भी ब्राह्मण नहीं होता;—देवी गायत्रीके त्रैकालिक अभ्यास हीसे ब्राह्मण होता है और किसी प्रकार नहीं होता। गायत्री ही परम विष्णु हैं, गायत्री ही परम शिव हैं, गायत्री ही परम ब्रह्मा हैं, इसलिये गायत्री ही ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रात्मक वेदत्रय हैं। वह रश्मिजाल-सम्पन्न दिवाकर ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हैं; वह सर्व्वतेजोराशि हैं, वही काल और कालप्रवर्त्तक हैं। सारासार-विवेचना-सम्पन्न, हम वैकुण्ठलोकवासीगण सूर्य्यको उद्देश करके सदा यह श्रुति कीर्त्तन किया करते हैं;—हे जनगण! यह सब देव दिक्‌विदिक् हैं, ऊर्द्ध अधः और तिर्य्यक् प्रदेश व्याप्त होकर वर्त्तमान हैं। यह अनादि-निधन हो कर भी उत्पन्न हैं, यही मातृगर्भमें अवस्थित हैं यही उत्पन्न होंगे; प्रति पदार्थमें इन्हींका अस्तित्व है और यही देव सर्व्वतोमुख हैं।" जो ब्राह्मण निरालस्य होकर सूर्य्यसूक्त द्वारा इस तरह सर्व्वदा ही सूर्य्यकी उपासना करते हैं, हे विप्र! वह लोग सूर्य्यतुल्य हो कर इस सूर्य्यलोकमें वास करते हैं। हे द्विज! रविवार पुष्यानक्षत्रमें, रविवारको हस्तानक्षत्रमें रविवारको मूलानक्षत्रमें और रविवार उत्तराषाढ़ा उत्तरभाद्रपदमें और उत्तर फाल्गुनीनक्षत्रमें सूर्य्यसम्बन्धमें जो कुछ किया जाता है, वही सफल होता है—अन्यथा नहीं होता। जो व्यक्ति, एकाहारी, कामक्रोधशून्य और व्रतधारी होकर पौषमास रविवारको सूर्य्योदय-कालमें स्नानकर श्रद्धाके साथ सूर्य्यका दान होम, जप और पूजा करते हैं, वह दीप्तिशाली और भोगसम्पन्न होकर अप्सराओंके साथ सूर्य्यलोकमें वास करते हैं। जो सब सुव्रत व्यक्ति अयन-संक्रान्ति, विष्णु-संक्रान्ति, षड़शीति-संक्रान्ति और विष्णुपदी संक्रान्तिमें महादान करते हैं, साज्य तिल-होम करते हैं और ब्राह्मण भोजन कराते हैं, जो पितृलोकके उद्देशसे इन सब दिनों श्राद्ध करते हैं, इन सब दिनों महापूजा करते हैं और महामन्त्र जप करते हैं, वह सूर्य्यसमप्रभ होकर सूर्य्यलोकमें वास करते हैं। संक्रान्तिके दिन जो सूर्य्यकी आराधना करते हैं, वह दरिद्र, दुःखार्त्त, रोगार्त्त, कुरूप वा दुर्भाग्यसम्पन्न नहीं होते। जो संक्रान्ति दान नहीं करते, तीर्थजलमें स्नान नहीं करते, कपिला-गव्यघृतसिक्त तिल द्वारा विशेष होम नहीं करते, उह नेत्र-

हीन, मुखहीन, छिन्नवस्त्र-परिधान लोगोंके द्वार द्वार 'देहि देहि' रव करते दिखाई देते हैं। जो कोई सूर्य्यग्रहणमें कुरु-क्षेत्रमें एक कुंच भी सुवर्ण दान करते हैं, वही पुण्यवान् इस सूर्य्यलोकमें वास करते हैं। दिवाकरके राहुग्रस्त होनेसे सभी जल गङ्गाजलके तुल्य है; सभी ब्राह्मण साक्षात् ब्रह्माके तुल्य हैं और सभी देय पदार्थ सुवर्णकी तरह हो जाते हैं। सूर्य्य-ग्रहणमें दान, जप, होम, स्नान, और श्राद्धा-दि जो कुछ सदनुष्ठान किये जाते हैं वही सूर्य्यलोकप्राप्तिके हेतु होते हैं। षष्ठी या सप्तमीको रविवार होनेसे उसमें जो पुण्यकार्य्य किये जाते हैं उसका फल भोग यह सूर्य्यलोक होता है। हंस भानु, सहस्रांशु, तपन, तापन रवि, विकर्त्तन विवस्वान् विश्वकर्म्मा, विभावसु, विश्वरूप, विश्वकर्त्ता, मार्त्तण्ड, मिहिर, अंशुमान, आदित्य, उष्णगु सूर्य्य, अर्य्यामा, ब्रध्न, दिवाकर, द्वादशात्मा, सप्तहय, भास्कर, अहस्कर, खग, सूर, प्रभाकर, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, त्रिलोकेश, लोकसाक्षी, तमोरि, शाश्वत, शुचि, गभस्तिहस्त, तीव्रां-शु, तरणि, समूह, अरणि, द्युमणि, हरिदश्व, अर्क, भानुमान्, भयनाशन, छन्दोश्व, वेदवेद्य, भास्वान्, पूषा वृषाकपि, एकचक्ररथ, मित्र, मन्देहारि, तमिस्रहा, दैत्यहा, पापहर्त्ता, धर्म्माधर्म्म-प्रकाशक, हेलिक, चित्रभानु, कलिघ्न, तार्क्ष्यवाहन, दिक्पति, पद्मिनीनाथ कुशेशय, कर, हरि, घर्म्मरश्मि, दुर्निरीक्ष्य, चण्डांशु, कश्यपात्मज—यह सप्ततिसंख्यक पवित्र सूर्य्यनाम हैं। इनमेंका प्रत्येक चतुर्थीका एकवचनान्त है आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः पद,—इस तरह प्रत्येक पद उच्चारण करके और प्रत्येक बार सूर्य्यदर्शन करके महापूज्य सूर्य्यदेवको पाणिपुटगृहीत, जलपूर्ण, सुनिर्म्मल, ताम्र-पात्रमें स्थित, करवीरादिपुष्प, रक्तचन्दन, दुर्व्वाङ्कुर और अक्षत द्वारा अर्घ्य प्रदान ध्यानपूर्व्वक करें। उस पाणिपुट-गृहीत अर्घ्यपात्रको मस्तकके निकट पर्य्यन्त लाकर मन और नयन सूर्य्यमें समाधान पूर्व्वक यह अर्घ्यदान करना पड़ेगा। और उदय और अस्तकालमें सूर्य्यको प्रत्येक मन्त्र उ-च्चारणपूर्व्वक नमस्कार करना पड़ेगा। सर्व्व-मन्त्रमें महा गोपनीय इन सप्तति संख्यक मन्त्रद्वारा ऐसा अनुष्ठान जो मनुष्य करेगा, वह कभी दरिद्र वा दुःखी न होगा। ज-न्मान्तरार्ज्जित पापफलसे घोरतर बहुरोग होनेपर भी बिना औषधिके, बिना वैद्यके, बिना पथ्यके इस कार्य्यप्रभाव हीसे मुक्तिलाभ होता है। फिर यथासमय मृत्युके उपरान्त सूर्य्यलोकमें सम्मानके साथ वास होता है। हे सत्तम सूर्य्यलोकका यह एकांशमात्र कीर्त्तन किया; इन महातेजोनिधिकी वि-शेषज्ञता किसे है? शिवशर्म्माने यह पवित्र कथा श्रवण करते करते क्षणभरमें महेन्द्रकी महानगरी देखी। अगस्त्यने कहा,—

अप्सरा लोककी कथा और सूर्य्यलोककी कथा श्रवण करनेसे कभी दारिद्र्य नहीं होता और अधर्म्म प्रवृत्ति नहीं होती। ब्राह्मण यह उत्तम व्याख्यान सदा श्रवण करें; वेद पाठसे जो फल लाभ होता है, इस व्याख्यानके श्रवणसे वही पुण्य होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह उत्तम अध्याय सुनकर इस लोककी पापराशिसे विमुक्त होकर अत्युत्तम गति लाभ करते हैं।

नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

दशम अध्याय।

अमरावती वृत्तान्त और वह्निलोक-प्रसङ्ग।

शिवशर्म्माने कहा,—मनोभिरामा नयनानन्दराशि-प्रदायिनी अत्युत्तमा इस नगरीका नाम क्या और इसके अधीश्वर कौन हैं? विष्णुपारिषदद्वयने कहा,—हे महाभाग शिवशर्म्मन्! यह अमरावती है; सुतीर्थ-सेवा-फलपूर्ण मनुष्यरूप वनस्पति ही इस स्थानमें क्रीड़ा करती है। विश्वकर्म्माने अतिशय तपस्याके बलसे यह पुरी निर्म्माण की है। यहां चन्द्रिका दिनमें भी सौधश्रेणी-शोभाका आश्रय करके रहती हैं। चन्द्र जब अमावस्याको या अन्य किसी समय अदृश्य होते हैं, तो वह अपनी प्रियतमा ज्योत्स्नाको इन्हीं सब सौधमें छिपा रख जाते हैं। यही क्या कम आश्चर्य है, कि इस नगरीस्थित सुनिर्म्मल भित्तिमें आत्मप्रतिविम्ब अवलोकन करके सुधा-रमणी, स्वामीकी लाई दूसरी नारीकी शङ्कासे शीघ्र चित्रशाला प्रवेश कर नहीं सकती। इस नगरीमें अन्धकार, नीलमणिनिर्म्मित हर्म्म्यश्रेणीमें निज नीलिमा अर्पण करके दिनमें भी निर्भय अवस्थान करता है। इस नगरीमें चन्द्रकान्त-मणिरचित निर्म्मल जल; लोग कलसोंमें भर भर वहांसे ले जाते हैं और दूसरे जलकी इच्छा नहीं करते। यहां कोरी भी नहीं, वह सब सुवर्णकार भी नहीं हैं; कल्पद्रुम ही यहां वसन-भूषण जुटाया करते हैं। यहां चिन्ताविद्याविशार, दगणकजुल नहीं हैं; साक्षात् चिन्तामणि शीघ्र ही सबकी चिन्ताका विषय जाना करते हैं। पापकर्म्म-सुनिपुण सूपकार भी यहां नहीं हैं; अकेली कामधेनु हीसे सब प्रकारके रस दूह लिये जाते हैं। जिनकी कीर्त्ति लोगोंने उत्तमरूपसे श्रवण की है, सर्व्व वाजिराजिमें अश्वरत्न वह महाबल उच्चैश्रवा इसी नगरीमें वर्त्तमान हैं, स्फटिकोज्ज्वल चतुर्द्दन्त करिवर ऐरावत, स्फटिकोज्ज्व जङ्गम द्वितीय कैलासकी तरह इसी लोकमें विराजमान हैं। इसी स्थानमें पारिजात तरु ही वृक्षरत्न है; वह उर्व्वशी ही स्त्रीरत्न हैं; नन्दन कानन ही वनरत्न है और मन्दाकिनी जल ही जलरत्न है; श्रुतिकथित तेंतीस कोटि देवता इसी स्थानमें प्रतिदिन इन्द्रसेवाके

लिये अवसर प्रतीक्षा करते हैं। स्वर्गमें इन्द्रपदकी अपेक्षा उत्तम पद और कोई नहीं है। त्रैलोक्यमें जितने ऐश्वर्य्य हैं, वह सब इस ऐश्वर्य्यके तुल्य नहीं। सहस्र अश्वमेधके बदले जो लाभ किया जाता है, उस फलके तुल्य पवित्र और महत् और क्या हो सकता है! अर्च्चिष्मती, संयमिनी, पुण्यवती, अमलावती, गन्धवती, अलका और ऐशी—सप्त दिक्पालोंकी यह सप्तपुरी भी महासमृद्धिमें अमरावती तुल्य नहीं है। यही सहस्राक्ष, यही दिवस्पति, यही देव-श्रेष्ठ शतक्रतु हैं;—यह सब नाम और किसीके नहीं हैं। इसरे सप्तलोकपाल भी इनकी उपासना करते हैं। नारदादि मुनिगण भी आशीर्व्वाद द्वारा इनकी सम्मानना किया करते हैं। इन्द्रका स्थैर्य्य ही सब लोगोंका स्थैर्य्य है और इन्द्रकी पराजय ही त्रैलोक्यकी पराजय है। इस इन्द्र-पदलाभके अभिलाषी होकर दैत्य, दानव, मानव, गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षस उग्रसंयम अवलम्बनपूर्व्वक तपस्या करते हैं। अश्व-मेधकारी सगरादि राजगणने इन्द्र ऐश्वर्य्य ग्रहणके इच्छुक होकर महायत्न किया था। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर पृथिवीमें सौ अश्वमेध यज्ञ निर्व्विघ्न समाप्त कर सकता है, वह अमारावतीमें शची प्राप्त होता है। जिसका शतक्रतु समाप्त नहीं होता, ऐसे राजा और ज्योतिष्टोमादि-यागकर्त्ता द्विजाति इस अमरावतीमें वास करते हैं। जो सब निर्म्मलात्मा व्यक्ति, तुलापुरुषदान प्रभृति षोड़श महादान करते हैं, उन्हें अमरावती प्राप्ति होती है। निर्भयवादी, समरमें अपराङ्मुख, वीरशय्यामें शायित, धीर, वीर क्षत्रियगण, इसी स्थानमें अवस्थान करते हैं। इस इन्द्रनगरका भाव-परिचय मैंने नाममात्रको दिया है। यज्ञ-विद्या-विशारद, पाययूकगण भी इसी स्थानमें वास करते हैं। यह अर्च्चिष्मती नाम्नी मङ्गलमयी वह्नि नगरी अवलोकन करो; अग्निभक्त सुव्रतगण, इसी स्थानमें अवस्थान करते हैं। जो सब दृढ़सत्य, जितेन्द्रिय पुरुष और सत्त्वबहुला रमणियां अग्निप्रवेश करती हैं, वह सभी अनलकीसी तेजस्वी होकर अग्निलोकमें अवस्थित होती हैं। जो सब ब्राह्मण अग्निहोत्र-रत हैं, जो साग्निक ब्रह्म-चारी हैं और जो पञ्चाग्निव्रत-परायण हैं, वह अग्निलोकमें अग्निके समान तेजस्वी होकर अवस्थान करते हैं। जो व्यक्ति शीतकालमें, शीतापहरणके लिये लोगोंको काष्ठभार प्रदान करते हैं और अग्निकुण्ड निर्म्माण कर देते हैं, वह अनलसमीपमें वास करते हैं। जो लोग श्रद्धाके साथ अनाथोंका अग्निसंस्कारकार्य्य करते हैं, या स्वयं इस कार्य्यमें अशक्त रहनेसे, अग्नि-संस्कारके लिये अन्य किसीको भेजते हैं, वह अग्निलोकमें सम्मानके साथ गृहीत होते हैं। जो व्यक्ति जठराग्नि-वृद्धिके लिये, मन्दाग्नि व्यक्तिको अग्निकारक औषध